मधु-संचय

भाग-1

(कक्षा 9 'अ' के लिए हिंदी की पूरक पाठ्यपुस्तक)

संपादक

स्नेह लता प्रसाद

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

आमुख

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् के तत्त्वावधान में विद्यालयी स्तर पर विभिन्न शैक्षिक विषयों के लिए पाठ्यचर्या एवं तदनुरूप पाठ्यक्रम तथा पाठ्यपुस्तकों के निर्माण का कार्य लगभग चार दशकों से हो रहा है। इसी क्रम में राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) के लागू होने पर तद्निहित सिद्धांतों, सुझावों और उद्देश्यों के अनुसार उपयुक्त शिक्षण-सामग्री एवं पाठ्यपुस्तकों का निर्माण किया गया, जिनमें बाल-केंद्रित शिक्षा एवं शिक्षार्थियों के सर्वांगीण विकास पर विशेष बल दिया गया।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में यह सुझाव भी दिया गया था कि कुछ समय के पश्चात् ज्ञान-विज्ञान के विकास, सामाजिक रचना और नवीन दृष्टिकोण, मूल्यपरक शैक्षिक आवश्यकताओं को देखते हुए पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तकों में यथावश्यक संशोधन और परिवर्तन अवश्य किया जाए। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए 'विद्यालयी शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2000' का निर्माण हुआ। तत्पश्चात् नवीन पाठ्यचर्या में सुझाए गए नवीन उद्देश्यों, जीवन मूल्यों, सूचना-संसाधनों एवं शिक्षा के व्यावहारिक पक्ष की दृष्टि से अपेक्षित शैक्षिक बिंदुओं को समाहित करते हुए विविध विषयों का नवीन पाठ्यक्रम तैयार किया गया। तदनुसार नवीन पाठ्यपुस्तकों के निर्माण का कार्य हाथ में लिया गया। इसी शृंखला में नवीं कक्षा के हिंदी 'अ' कोर्स के लिए पूरक पठन की इस पुस्तक **मधु-संचय भाग-1** का प्रणयन किया गया है।

इस पुस्तक के प्रणयन में जिन प्रमुख सिद्धांतों का विशेष ध्यान रखा गया है, वे इस प्रकार हैं—

1. पुस्तक में ऐसी पठन-सामग्री का समावेश किया जाए जो शिक्षार्थी में राष्ट्रीय लक्ष्यों तथा केंद्रिक पाठ्यक्रम में प्रतिपादित जीवन-मूल्यों, लोकतंत्र, धर्म-निरपेक्षता, समाजवाद, सामाजिक-न्याय और राष्ट्रीय एकता के प्रति चेतना एवं आस्था विकसित कर सके।

2. पठन-सामग्री में भारतीय परिस्थितियाँ तथा राष्ट्र की सामासिक संस्कृति परिलक्षित हो।
3. पूरक पुस्तक मूलतः स्वाध्याय के द्वारा पठन-रुचि विकसित करने के लिए होती है। अतः प्रस्तुत पुस्तक के लिए ऐसी पाठ्य-सामग्री के निर्माण का प्रयास किया गया है जो अपनी रोचकता, बोधगम्यता एवं विविधता के कारण शिक्षार्थियों को स्व-अध्ययन के लिए तो प्रेरित करे ही, साथ ही उन्हें इस प्रकार की अन्य सामग्री पढ़ने के लिए भी उत्प्रेरित कर सके। इस प्रकार की सामग्री के अध्ययन से छात्रों में उत्तरोत्तर भाषिक एवं साहित्यिक योग्यताओं का विकास हो सकेगा।

प्रस्तुत पुस्तक द्वारा जहाँ एक ओर हिंदी के भारतीय सामासिक संस्कृति के संवाहिका रूप को उजागर करने की चेष्टा की गई है वहीं दूसरी ओर साहित्य, समाज, कला, विज्ञान आदि क्षेत्रों में देश की गौरवमयी परंपरा और उसमें निहित जीवन-मूल्यों को रेखांकित करने का भी प्रयत्न किया गया है।

प्रस्तुत पुस्तक के निर्माण में हमें अनेक शिक्षाविदों, भाषाशास्त्रियों एवं अध्यापकों का सहयोग मिला है। मैं उन सभी के प्रति हृदय से कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

जिन लेखकों ने अपनी रचनाएँ इस पाठ्यपुस्तक में सम्मिलित किए जाने की अनुमति दी है उनके प्रति मैं विशेषरूप से अपना आभार व्यक्त करता हूँ।

इस पुस्तक के परिष्कार के लिए शिक्षाविदों और अध्यापकों द्वारा व्यक्त प्रतिक्रियाओं और सुझावों का हम सदैव स्वागत करेंगे।

जगमोहन सिंह राजपूत
निदेशक
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

जनवरी 2002
नई दिल्ली
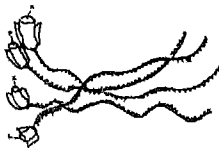
भूमिका

कक्षा 9 के हिंदी 'अ' कोर्स के लिए प्रस्तुत पूरक पाठ्यपुस्तक के निर्माण में विद्यार्थियों की पूर्वार्जित भाषा योग्यता, बौद्धिक क्षमता एवं रुचि का ध्यान रखते हुए यह प्रयास किया गया है कि इसके माध्यम से वे विभिन्न साहित्यिक विधागत विशेषताओं से परिचित हों और उनमें स्वाध्याय की प्रवृत्ति भी विकसित हो। यह भी प्रयत्न किया गया है कि जो साहित्यिक विधाएँ नवीं कक्षा की मुख्य पाठ्यपुस्तक में सम्मिलित नहीं हो पाई हैं वे इस पूरक पठन की पुस्तक **मधु-संचय भाग-1** में अवश्य आ जाएँ। इस दृष्टि से इस पुस्तक में कहानी और व्यंग्य के अतिरिक्त जीवनी, आत्मकथा, रेखाचित्र एवं एकांकी को स्थान दिया गया है। इनके अध्ययन से अपेक्षा की जाती है कि विद्यार्थी इन विविध विधाओं की शैलीगत विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे।

आज देश में संकीर्ण संप्रदायवाद और असहिष्णुता की प्रवृत्ति के कारण हम भारतीय जीवन-मूल्यों तथा अपनी समन्वयवादी सामासिक संस्कृति से दूर होते जा रहे हैं। साहित्य की समुचित शिक्षा इस प्रवृत्ति को दूर करने और छात्र-छात्राओं में राष्ट्र के प्रति स्वस्थ अभिरुचि विकसित करने में एक प्रेरक साधन बन सकती है। इस दृष्टि से पाठ्य-सामग्री के चयन और संयोजन में निम्नलिखित बिंदुओं को केंद्र में रखा गया है :

पठन-सामग्री ऐसी हो जिसके माध्यम से विद्यार्थी लोक-परंपरा, साहित्य, कला, विज्ञान, समाज आदि के क्षेत्र में अपनी सांस्कृतिक विरासत से परिचित हों और उनमें उसके प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित हो।

विधागत पाठ्य-सामग्री के चयन में रोचकता और विविधता का ध्यान रखा गया है।

पठन-सामग्री के बोधन की दिशा में अध्यापक एवं विद्यार्थियों को स्पष्ट दृष्टि देने के विचार से प्रत्येक पाठ के अंत में बोध-प्रश्न दिए गए हैं। आशा है कि इन प्रश्नों की सहायता से न केवल विद्यार्थियों के बोधन का मूल्यांकन हो सकेगा, बल्कि पाठ में निहित विविध शैक्षणिक बिंदु भी उभरकर सामने आ सकेंगे।

प्रस्तुत पुस्तक में सम्मिलित रचनाओं की कतिपय विशेषताएँ इस प्रकार हैं :

आशीर्वाद : सुदर्शन रचित ऐसी कहानी है जिसमें तीर्थयात्रा की मनौती की पूर्ति के लिए एकत्र धनराशि को आपद्ग्रस्त व्यक्ति की सहायता के लिए सहर्ष दे देने का प्रभावी चित्रण है। परोपकार ही श्रेष्ठ धर्म है यही इसका संदेश है।

अगला स्टेशन : श्री केशवचंद्र वर्मा का रोचक हास्य व्यंग्य है। इसमें आज की इस सरकारी व्यवस्था में काम न करने अथवा उसे आगे के लिए टालते रहने की मनोवृत्ति पर व्यंग्य किया गया है। इसमें वस्तुतः काम न होने की स्थिति में भी उसके होने का आश्वासन देकर लोगों को संतुष्ट किए रहने की प्रवृत्ति पर प्रकाश डाला गया है।

सड़क की बात : रवींद्रनाथ ठाकुर द्वारा रचित 'सड़क की बात' एक आत्मकथा है। सड़क अपने ऊपर से गुज़रने वालों के सुख-दुख की गाथा की साक्षी है। इस आत्मकथा में सड़क पर पड़ने वाले प्रभाव का भी मनोहारी चित्रण है।

साए : हिमांशु जोशी की यह कहानी जीवन के इस पक्ष पर प्रकाश डालती है कि कैसे कभी-कभी किसी बहाने का सहारा लेकर अपने हितैषी के आश्रितों की सहायता की जा सकती है और उन्हें सफल जीवन के
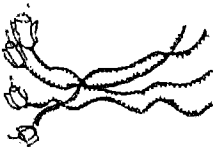
लक्ष्य तक पहुँचाया जा सकता है। कहानी का घटनाक्रम, विकास और निष्पत्ति बहुत ही मर्मस्पर्शी हैं।

निक्की, रोज़ी और रानी : महादेवी की लेखनी से निःसृत एक ऐसा अनुरंजक रेखाचित्र है जो विद्यार्थियों में वन्य प्राणियों एवं पालतू जीव-जंतुओं के प्रति प्यार और आत्मीयता की भावना जाग्रत करता है।

जगदीशचंद्र बसु : शिवदानसिंह चौहान द्वारा लिखित वैज्ञानिक जगदीशचंद्र बसु की जीवनी बड़े ही प्रेरक रूप में प्रस्तुत की गई है। उनके आविष्कारों से परिचित होकर निस्संदेह ही विद्यार्थियों में पेड़-पौधों के प्रति रुचि एवं उनके संरक्षण की प्रवृत्ति जाग्रत होगी।

दिल में जमी बर्फ़ : अशोक राही द्वारा रचित एकांकी में माता-पिता द्वारा बच्चों की उचित देख-रेख और नारी सम्मान पर बल दिया गया है।

आशा है यह पुस्तक विद्यार्थियों को रुचिकर लगेगी और उनमें स्वाध्याय की प्रवृत्ति बढ़ाने के साथ-साथ विभिन्न जीवन मूल्यों के प्रति समझ भी उत्पन्न कर सकेगी।
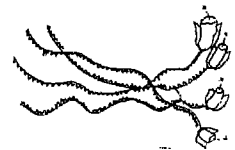
पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति

डॉ. स्नेह लता प्रसाद　　प्रो. अनिरुद्ध राय　　प्रो. सत्येंद्र वर्मा

सामाजिक विज्ञान और मानविकी शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली

पांडुलिपि समीक्षा-संशोधन कार्यगोष्ठी के सदस्य

1. श्री निरंजन कुमार सिंह
अवकाश प्राप्त प्रवाचक,
सामाजिक विज्ञान और मानविकी शिक्षा विभाग
एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली

2. डॉ. आनंद प्रकाश व्यास
अवकाश प्राप्त प्रवाचक,
शिक्षा विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

3. डॉ. माणिक गोविंद चतुर्वेदी
अवकाश प्राप्त प्रोफेसर, केंद्रीय हिंदी संस्थान
सूर्यमुखी, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली

4. डॉ. मान सिंह वर्मा
अध्यक्ष, हिंदी विभाग
मेरठ कॉलेज, मेरठ

5. डॉ. प्रभात कुमार
प्रवाचक, हंसराज कॉलेज
मलका गंज, दिल्ली विश्वविद्यालय,
दिल्ली

6. डॉ. नीरा नारंग
वरिष्ठ प्रवक्ता
शिक्षा विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

7. श्री प्रभाकर द्विवेदी
अवकाश प्राप्त मुख्य संपादक
प्रकाशन विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली

8. डॉ. सुरेश पंत, अवकाश प्राप्त प्रवक्ता
राजकीय उच्चतर माध्यमिक बाल
विद्यालय, जनकपुरी, नई दिल्ली

9. कुमारी इंद्रा सक्सेना
वरिष्ठ हिंदी अध्यापिका
डी.एम.स्कूल, क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान
एन.सी.ई.आर.टी., अजमेर

10. कुमारी कुसुम सिन्हा
वरिष्ठ हिंदी अध्यापिका
केंद्रीय विद्यालय
सी.आर.पी.एफ. ग्रुप सेन्टर-1, अजमेर

11. कुमारी कुसुमलता अग्रवाल
हिंदी अध्यापिका
सर्वोदय बाल विद्यालय
रमेश नगर, नई दिल्ली

12. श्रीमती सावित्री शर्मा
हिंदी अध्यापिका
डी.एम. स्कूल, क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान
एन.सी.ई.आर.टी., अजमेर

13. प्रो. कृष्ण कुमार गोस्वामी
प्रभारी
केंद्रीय हिन्दी संस्थान
नई दिल्ली

14. प्रो. सूरज मान सिंह
अवकाश प्राप्त प्रभारी,
केंद्रीय हिन्दी संस्थान,
नई दिल्ली

विषय-सूची

भारत का संविधान

उद्देशिका

हम, भारत के लोग, भारत को एक [1] [संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न समाजवादी पंथनिरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य] बनाने के लिए, तथा उसके समस्त नागरिकों को :

सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय,
विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म
और उपासना की स्वतंत्रता,
प्रतिष्ठा और अवसर की समता
प्राप्त कराने के लिए,
तथा उन सब में
व्यक्ति की गरिमा और [2] [राष्ट्र की एकता
और अखंडता] सुनिश्चित करने वाली बंधुता
बढ़ाने के लिए

दृढ़संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26 नवंबर, 1949 ई० को एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।

1. संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 की धारा 2 द्वारा (3.1.1977 से) "प्रभुत्व-संपन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य" के स्थान पर प्रतिस्थापित।
2. संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 की धारा 2 द्वारा (3.1.1977 से) "राष्ट्र की एकता" के स्थान पर प्रतिस्थापित।

भाग 4 क

मूल कर्तव्य

51 क. **मूल कर्तव्य** – भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह –

(क) संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्र ध्वज और राष्ट्र गान का आदर करे;
(ख) स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय मे संजोए रखे और उनका पालन करे;
(ग) भारत की प्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण रखे;
(घ) देश की रक्षा करे और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे;
(ङ) भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभाव से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो स्त्रियों के सम्मान के विरुद्ध हैं;
(च) हमारी सामासिक संस्कृति की गौरवशाली परंपरा का महत्व समझे और उसका परिरक्षण करे;
(छ) प्राकृतिक पर्यावरण की जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी, और वन्य जीव हैं, रक्षा करे और उसका संवर्धन करे तथा प्राणि मात्र के प्रति दयाभाव रखे;
(ज) वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे;
(झ) सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे;
(ञ) व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत प्रयास करे जिससे राष्ट्र निरंतर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊंचाइयों को छू ले।

1 आशीर्वाद

सुदर्शन

लाजवंती के यहाँ कई पुत्र पैदा हुए, मगर सब-के-सब बचपन ही में मर गए। आखिरी पुत्र हेमराज उसके जीवन का सहारा था। उसका मुँह देखकर वह पहले बच्चों की मौत का दुख भूल जाती थी। यद्यपि हेमराज का रंग-रूप साधारण देहाती बालकों का-सा ही था, मगर लाजवंती की आँखों में वैसा बालक सारे संसार में न था। माँ की ममता ने उसकी आँखों को धोखे में डाल दिया था। लाजवंती को उसकी इतनी चिंता थी कि दिन-रात उसे छाती से लगाए फिरती थी। मानो वह कोई दीपक हो, जिसे बुझाने के लिए हवा के तेज़ झोंके बार-बार आक्रमण कर रहे हों। वह उसे छिपा-छिपाकर रखती थी – कहीं उसे किसी की नज़र न लग जाए। गाँव के लड़के प्रायः खेतों में खेलते-फिरते, मगर लाजवंती, हेमराज को घर से बाहर न निकलने देती थी और अगर कभी वह निकल भी जाता तो लाजवंती घबराकर ढूँढ़ने लग जाती थी।

गाँव की स्त्रियाँ कहतीं – "हमारे भी तो बच्चे हैं। तू ज़रा-ज़रा-सी बात में यों पागल क्यों हो जाती है?"

लाजवंती यह सुनती, तो उसकी आँखों में आँसू लहराने लगते। भर्राए हुए स्वर में उत्तर देती– "क्या कहूँ? मेरा जी डर जाता है!"

इस समय उसे अपने मरे हुए पुत्र याद आ जाते थे और उसके मन में भय बैठ जाता था।

मगर इतना सावधान रहने पर भी हेमराज बुरी नज़र से न बच सका। प्रातःकाल था, लाजवंती दूध दुह रही थी। इतने में हेमराज जागा और जागते ही मुँह फुलाकर बोला – "माँ!"

आवाज़ में उदासी थी, लाजवंती के हाथ से बरतन गिर गया। दौड़ती हुई हेमराज के पास पहुँची और प्यार से उसके सिर पर हाथ फेरकर बोली – "क्यों हेम ! क्या है बेटा? घबराया हुआ क्यों है तू? इस तरह क्यों बोलता है तू?"

हेमराज की आँखों में आँसू डबडबा आए, रुक-रुककर बोला – "सिर में दर्द होता है – बहुत दर्द होता है।"

बात साधारण थी, मगर लाजवंती का नारी-हृदय काँप गया। यही दिन थे, यही ऋतु थी, जब उसका पहला पुत्र मदन मरा था। वह भी इसी तरह बीमार हुआ था। उस समय भी लाजवंती ने उसकी सेवा-सुश्रूषा में दिन-रात एक कर दिया था। मगर जो होना होता है, उसे कौन टाल सकता है! निर्दयी मृत्यु ने लाजवंती का पुत्र छीन लिया। लाजवंती उस समय इस दुख से अधमरी-सी हो गई थी। वही घटना इस समय उसकी आँखों के सामने फिर गई। क्या अब फिर?

लाजवंती के पैरों के नीचे से धरती खिसकती-सी मालूम होने लगी। जिस तरह विद्यार्थी एक बार फेल होकर दूसरी बार परीक्षा में बैठते समय घबराता है, उसी प्रकार हेमराज के सिरदर्द से लाजवंती व्याकुल हो गई। गाँव में दुर्गादास वैद्य अच्छे अनुभवी वैद्य थे। लोग उन्हें लुकमान समझते थे। सैकड़ों रोगी उनके हाथों से स्वस्थ होते थे। आसपास के गाँवों में भी उनका बड़ा नाम था। लाजवंती उड़ती हुई उनके पास पहुँची। वैद्यजी बैठे एक पुराना साप्ताहिक समाचारपत्र पढ़ रहे थे। लाजवंती को देखकर उन्होंने पत्र हाथ से रख दिया और आँखों से ऐनक उतारकर बोले – "क्यों बेटी! क्या बात है?"

वैद्यजी इस गाँव के रहने वाले न थे। उनकी अवस्था भी पचास से ऊपर थी। अतएव गाँव की बहू-बेटियाँ उनसे परदा न करती थीं। लाजवंती ने चिंतित-सा होकर उत्तर दिया, "हेम बीमार है।"

वैद्यजी ने सहानुभूति के साथ पूछा – "कब से?"

"आज ही से । कहता है, सिर में दर्द है।"
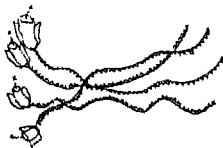
"बुखार तो नहीं?"

"मालूम तो नहीं होता। आप चलकर देख लेते तो अच्छा था।"

वैद्यजी का मनोरथ सिद्ध हुआ। उन्होंने जल्दी से कपड़े पहने और लाजवंती के साथ हो लिए। जाकर देखा, तो हेमराज बुखार से बेसुध पड़ा था।

वैद्यजी ने नाड़ी देखी, माथे पर हाथ रखा, और फिर कहा — "कोई चिंता नहीं। दवा देता हूँ। बुखार उतर जाएगा।"

लाजवंती के डूबते हुए हृदय को सहारा मिल गया। उसने दुपट्टे के आँचल से अठन्नी निकाली और वैद्यजी को भेंट कर दी। वैद्यजी ने मुँह से 'नहीं-नहीं' कहा मगर हाथों ने मुँह का साथ न दिया। उन्होंने पैसे ले लिए।

कई दिन बीत गए, हेमराज का बुखार नहीं उतरा। वैद्यजी ने कई दवाइयाँ बदलीं, परंतु किसी ने अपना असर न दिखाया। लाजवंती की चिंता बढ़ने लगी। वह रात-रात-भर उसके सिरहाने बैठी रहती थी। लोग आते और धीरज दे-देकर चले जाते थे। परंतु लाजवंती का मन उनकी बातों की ओर न दौड़ता था। वह डरी-डरी रहती और अपने मन की पूरी शक्ति से हेम की सेवा में लगी रहती थी।

एक दिन उसने वैद्य से पूछा — "आखिर क्या बात है, जो यह बुखार उतरने का नाम नहीं लेता?"

वैद्यजी ने उत्तर दिया — "मियादी बुखार है।"

लाजवंती चौंक पड़ी। उसने तड़पकर पूछा — "मियादी बुखार क्या?"

"अपनी मियाद पूरी करके उतरेगा।"

"पर कब तक उतरेगा?"

"इक्कीसवें दिन उतरेगा, इससे पहले नहीं उतर सकता।"

"आज ग्यारह दिन तो हो गए हैं।"

"बस, दस दिन और हैं। किसी तरह यह दिन निकाल दो, भगवान भला करेगा।"
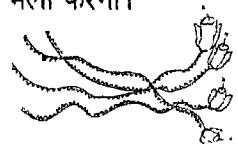
लाजवंती का माथा ठनका। हिचकिचाते हुए बोली — "कोई अंदेसा तो नहीं? सच-सच बता दीजिए।"

वैद्यजी थोड़ी देर चुप रहे। इस समय वह सोच रहे थे कि उसे सच-सच बताएँ या न बताएँ? आखिर बोले — "देखो! बुखार सख़्त है, हानिकारक भी हो सकता है। मेरी राय में तो हेम के पिता को बुलवा लो तुम।"

लाजवंती सहम गई। रेत के स्थलों को मीठे जल की नदी समझकर जब हरिण पास पहुँचकर देखता है कि नदी अभी तक उतनी ही दूर है, तो जो दशा उसके मन की होती है, वही दशा इस समय लाजवंती की हुई। उसे आशा नहीं, निश्चय हो गया था कि हेम एक-आध दिन में ठीक हो जाएगा। फिर उसी तरह खेलता फिरेगा, फिर उसी तरह नाचता फिरेगा। माँ देखेगी, खुश होगी। लोग बधाइयाँ देंगे। मगर वैद्य की बात सुनकर उसका दिल बैठ गया। आशा के साथ निराशा भी सामने आकर खड़ी हो गई।

उसका पति रामलाल सचदेव मुलतान में नौकर था। उसने उसे तार भेजा, वह तीसरे दिन पहुँच गया। इलाज दुगनी सावधानी से होने लगा। यहाँ तक कि दस दिन और भी बीत गए। अब इक्कीसवाँ दिन सिर पर था। लाजवंती और रामलाल दोनों घबरा गए। हेम की देह अभी तक आग की तरह तप रही थी। सोचने लगे — क्या बुखार एकाएक उतरेगा?

वैद्य ने आकर नाड़ी देखी, तो घबराकर बोले — "आज की रात बड़ी भयानक है। सावधान रहना — बुखार एकाएक उतरेगा।"

लाजवंती और रामलाल दोनों के प्राण सूख गए। वैद्य के शब्द किसी आने वाले भय की पूर्व सूचना थे। रामलाल दवाएँ सँभालकर बेटे के सिरहाने बैठ गए। परंतु लाजवंती के हृदय को कल न थी। उसने संध्या-समय थाल में घी के दीपक जलाए और मंदिर की ओर चली। इस समय उसे आशा अपनी पूरी जीवन-शक्ति के साथ सामने नाच करती हुई दिखाई दी। लाजवंती मंदिर में पहुँची और देवी के सामने गिरकर देर तक रोती रही। जब थककर उसने सिर उठाया, तो उसका मुख-मंडल शांत था, जैसे तूफ़ान के बाद समुद्र शांत हो जाता है।

उसको ऐसा मालूम हुआ, जैसे कोई दिव्य-शक्ति उसके कान में कह रही है — तूने आँसू बहाकर देवी के पाषाण हृदय को मोम कर लिया है। परंतु उसने इतने ही पर संतोष न किया, मातृ-स्नेह ने भय को चरम-सीमा पर पहुँचा दिया था। लाजवंती ने देवी की आरती उतारी, फूल चढ़ाए, मंदिर की परिक्रमा की और प्रेम के बोझ से काँपते हुए स्वर से मानता मानी — "देवी माता! मेरा हेम बच जाए, तो मैं तीर्थ-यात्रा करूँगी!"

यह मानता मानने के बाद लाजवंती को ऐसा जान पड़ा, जैसे उसके दिल पर से किसी ने कोई बोझ हटा लिया है, जैसे उसका संकट टल गया है, जैसे उसने देवताओं को खुश कर लिया है। उसे निश्चय हो गया कि अब हेम को कोई भय नहीं है। लौटी, तो उसके पाँव भूमि पर न पड़ते थे। उसके हृदय-समुद्र में आनंद की तरंगें उठ रही थीं।

वह उड़ती हुई घर पहुँची, तो उसके पति ने कहा — "लो बधाई हो! तुम्हारा परिश्रम सफल हो गया! बुखार धीरे-धीरे उतर रहा है।"

लाजवंती के मुख पर प्रसन्नता थी और आँखों में आशा की झलक। झूमती हुई बोली— "अब हेम को कोई डर नहीं है। मैं तीर्थ-यात्रा की मानता मान आई हूँ।"

रामलाल ने तीर्थ-यात्रा के खर्च का अनुमान किया, तो हृदय बैठ गया। परंतु पुत्र-स्नेह ने इस चिंता को देर तक न ठहरने दिया। उसने बादलों से निकलते हुए चंद्रमा के समान मुसकराकर उत्तर दिया — "अच्छा किया! रुपये का क्या है, हाथ का मैल है, आता है चला जाता है। परमेश्वर ने एक लाल दिया है, वह जीता रहे। यही हमारी दौलत है।"

लाजवंती ने स्वामी को सुला दिया और आप रात-भर जागती रही। उसके हृदय में ब्रह्मानंद की मस्ती छा रही थी। प्रभात हुआ तो हेम का बुखार बिलकुल उतर गया था। लाजवंती के मुख-मंडल से प्रसन्नता टपक रही थी, जैसे संध्या के समय गौओं के स्तनों से दूध की बूँदें टपकने लगती हैं।

वैद्यजी ने आकर देखा तो उनका मुँह भी चमक उठा। अभिमान से सिर उठाकर बोले— "अब कोई चिंता नहीं। तुम्हारा बच्चा बच गया।"
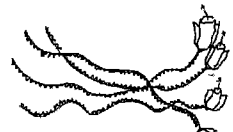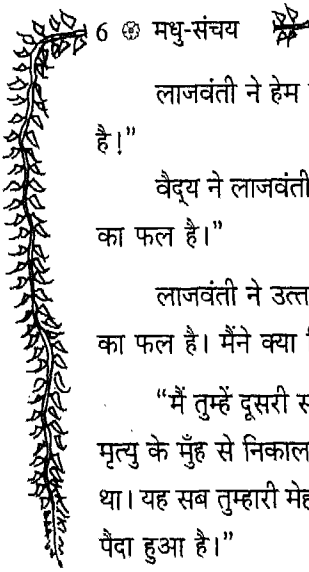
लाजवंती ने हेम की कमज़ोर देह पर हाथ फेरते हुए कहा – "क्या से क्या हो गया है!"

वैद्य ने लाजवंती की ओर देखा और रामलाल से बोले – "यह सब इसी के परिश्रम का फल है।"

लाजवंती ने उत्तर दिया – "देवी माता की कृपा है, अथवा आपकी दवा के प्रभाव का फल है। मैंने क्या किया है, जो आप कहते हैं कि यह मेरे परिश्रम का फल है?"

"मैं तुम्हें दूसरी सावित्री समझता हूँ। उसने मरे हुए पति को जिलाया था, तुमने पुत्र को मृत्यु के मुँह से निकाला है। तुम यदि दिन-रात एक न कर देतीं तो हेम का बचना असंभव था। यह सब तुम्हारी मेहनत का फल है। भगवान प्रसन्न हो गया। बच्चा बचा नहीं, दूसरी बार पैदा हुआ है।"

रामलाल के होंठों पर मुसकराहट थी, आँखों में चमक। इसके सातवें दिन वह अपनी नौकरी पर चले गए और कहते गए कि तीर्थ-यात्रा की तैयारी करो।

तीन महीने बीत गए। लाजवंती तीर्थ-यात्रा के लिए तैयार हुई। अब उसके मुख पर फिर वही आभा थी, आँखों में फिर वही चमक, दिल में फिर वही खुशी। हेम आँगन में इस तरह चहकता फिरता था, जैसे फूलों पर बुलबुल चहकती है। लाजवंती उसे देखती थी तो फूली न समाती थी।

तीर्थ-यात्रा पर जाने से पहले की रात उसके आँगन में सारा गाँव इकट्ठा हो रहा था। झाँझें और करतालें बज रही थीं। ढोलक की थाप गूँज रही थी। स्त्रियाँ गाती थीं, बजाती थीं, शोर मचाती थीं। दूसरी तरफ़ कहीं पूरियाँ बन रहीं थीं, कहीं हलुआ। उनकी सुगंध से दिमाग तर हुए जाते थे। लाजवंती इधर से उधर और उधर से इधर दौड़ी फिरती थी, मानो उसके यहाँ कोई ब्याह हो। एक ओर बेफ़िक्रे साधु सुलफ़े के दम लगाकर गाँव की हवा को शुद्ध कर रहे थे। उनकी ओर गाँव के लोग इस तरह देखते थे, जैसे किसान तहसीलदार को देखते हैं।
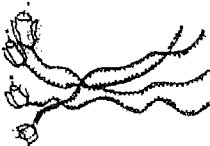
आँखों में श्रद्धा-भाव के स्थान में भय और आतंक की मात्रा अधिक थी। लाजवंती से कोई मैदा माँगता था, कोई घी। कोई कहता था — हलवाई चीनी के लिए चिल्ला रहा है। कोई पूछता था — अमचूर का बरतन कहाँ है? कोई और समय होता, तो लाजवंती घबरा जाती, पर इस समय उसके मुँह पर ज़रा घबराहट न थी। सोचती थी — कैसा सौभाग्य है जो यह दिन मिला! आज घबराहट कैसी? आज वह पूर्ण खुश थी।

परंतु सारा गाँव प्रसन्न हो, यह बात न थी। वहीं स्त्रियों में बैठी हुई एक बूढ़ी स्त्री असीम दुःख में डूबी हुई थी। वह लाजवंती की पड़ोसिन हरो थी। अत्यंत दुख के कारण उसके कंठ से आवाज़ न निकलती थी। शहर होता तो वह इस उत्सव में कभी सम्मिलित ही न होती। मगर गाँव की बात थी, न आती, तो उँगलियाँ उठने लगतीं। आनंदमय हास-परिहास के बीच उसका मस्तिष्क दुख और शोक के कारण ऐसे खौल रहा था, जैसे ठंडे समुद्र में गरम जल का स्रोत उबल रहा हो। वह स्रोत बाकी समुद्र से कितना परे, कितना अलग होता है!

इसी तरह रात के चार बज गए। लोग खा-पीकर आराम करने लगे। खाने में जो बच रहा, वह गरीबों में बाँट दिया गया । लाजवंती ने लोगों को विदा किया और चलने की तैयारी में लगी। उसने एक टीन के बक्स में ज़रूरी कपड़े रखे, एक बिस्तर तैयार किया, गले में लाल रंग की सूती माला पहनी, माथे पर चंदन का लेप किया। गऊ एक पड़ोसिन को सौंपी और उससे बार-बार कहा — "इसका पूरा-पूरा ध्यान रखना। मैं जा रही हूँ, मगर मेरा मन अपनी गऊ में रहेगा।"

सहसा किसी की सिसकी भरने की आवाज़ सुनाई दी। लाजवंती के कान खड़े हो गए। उसने चारों तरफ़ देखा, मगर कोई दिखाई न दिया। इस समय सारा गाँव सुख-स्वप्न में बेसुध पड़ा था। वह आँगन में निकल आई और ध्यान से सुनने लगी। सिसकी की आवाज़ फिर सुनाई दी।

लाजवंती छत पर चढ़ गई और पड़ोसिन के आँगन में झुककर ज़ोर से बोली — "माँ, हरो!"
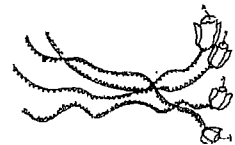
कुछ देर तक सन्नाटा रहा। फिर एक चारपाई पर से उत्तर मिला – "कौन है? लाजवंती?" आवाज़ में आँसू मिले हुए थे।

लाजवंती जल्दी से नीचे उतर गई और हरो के पास पहुँचकर बोली – "माँ, क्या बात है? तू रो क्यों रही है?"

हरो सचमुच रो रही थी। परंतु अपना रोना लाजवंती के सामने कहते हुए उसके नारी-दर्प को बट्टा लगता था, इसलिए अपनी वास्तविक अवस्था को छिपाती हुई बोली – "कुछ बात नहीं।"

"तू रो क्यों रही है?"

हरो के रुके हुए आँसुओं का बाँध टूट गया। उसका दुखी हृदय सहानुभूति की एक चोट को भी सहन न कर सका। वह और भी सिसकियाँ भर-भरकर रोने लगी।

लाजवंती ने फिर पूछा – "माँ! बात क्या है, जो तू इस समय रो रही है? मैं तेरी पड़ोसिन हूँ मुझसे न छिपा।"

हरो ने कुछ उत्तर न दिया। वह सोच रही थी कि इसे बताऊँ या न बताऊँ। प्रभात हो चला था, कुछ-कुछ प्रकाश निकल आया था। लाजवंती चलने के लिए आतुर हो रही थी। मगर हरो को क्या दुख है, यह जाने बिना चले जाना उसके लिए कठिन था। उसने तीसरी बार फिर पूछा – "माँ! बता दो ना, तुम्हें क्या दुख है?"

हरो ने दुखी होकर पूछा – "क्या तुम उसे दूर कर दोगी?"

"हो सका तो ज़रूर दूर कर दूँगी।"

"यह असंभव है।"

"संसार में असंभव कोई बात नहीं। भगवान सब-कुछ कर सकता है।"

हरो थोड़ी देर तक चुप रही, फिर धीरे से बोली – "कुँवारी बेटी का दुख खा रहा है। रात-रात भर रोती रहती हूँ। जाने, यह नाव कैसे पार लगेगी?"

"यह क्यों? उसके ब्याह का खर्च देना तो तुम्हारे जेठ ने मंजूर कर लिया है।"
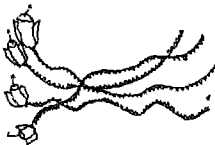
"ऐसे भाग होते तो रोना काहे का था?"

लाजवंती ने अकुलाकर पूछा — "तो क्या यह झूठ है?"

"बिलकुल झूठ भी नहीं। उन्होंने दो सौ रुपये के गहने-कपड़े बनवा दिए हैं, मगर मिठाई आदि का प्रबंध नहीं किया। अब चिंता यह है कि बारात आएगी, तो उसके सामने क्या धरूँगी? बाराती मिठाई माँगेंगे, पूरियाँ माँगेंगे, हलवा माँगेंगे। यहाँ सूखे सत्तू खिलाने की भी हिम्मत नहीं। यही सोच-सोचकर सूखती जाती हूँ।"

लाजवंती ने कुछ सोचकर उत्तर दिया — "क्या गाँव के लोग एक गरीब ब्राह्मणी की कन्या का ब्याह नहीं कर सकते? और यह उनकी दया न होगी, उनका धर्म होगा।"

हरो की आँखें भर आईं। वह इस समय गरीब थी, परंतु कभी उसने अच्छे दिन भी देखे थे। लाजवंती के प्रस्ताव से उसे दुख हुआ, जैसे नया-नया भिखारी गालियाँ सुनकर पृथ्वी में गड़ जाता है। उसने धीरे-से कहा — "बेटी! मुझसे भी तो यह अपमान न देखा जाएगा।"

"परंतु इस तरह तो गाँव-भर की नाक कट जाएगी।"

हरो ने बात काटकर कहा — "मैं भी तो इसे सहन नहीं कर सकूँगी। किसी के सामने हाथ फैलाना मरने से भी बुरा है।"

"तो क्या करोगी? कन्या कुँवारी बैठा रखोगी?"

"भगवान की यही इच्छा है तो मेरा क्या बस है? उसे लेकर कहीं निकल जाऊँगी। न कोई देखेगा, न कोई बात करेगा।"

लाजवंती ब्राह्मणी की अवस्था देखकर काँप गई। उसे ऐसा मालूम हुआ, जैसे कोई कह रहा है कि अगर यह हो गया तो ईश्वर का कोप गाँव-भर को जलाकर राख कर देगा। लाजवंती अपने-आपको भूल गई। उसका हृदय दुख से पानी-पानी हो गया। उसने जोश से कहा — "चिंता न करो, तुम्हारा संकट मैं दूर करूँगी। तुम्हारी बेटी का ब्याह होगा और बारात के लोगों को भोजन मिलेगा। तेरी बेटी तेरी ही बेटी नहीं है, मेरी भी है।"
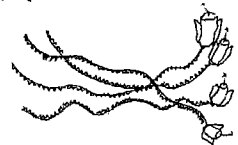
हरो ने वह सुना, जिसकी उसे इच्छा थी, परंतु आशा न थी। उसकी आँखों में कृतज्ञता के आँसू छलकने लगे। लाजवंती तीर्थ-यात्रा के लिए अधीर हो रही थी। वह सोचती थी, हरिद्वार, मथुरा, वृंदावन के मंदिरों को देखकर हृदय कली की तरह खिल जाएगा। मगर जो आनंद उसे इस समय प्राप्त हुआ, वह उस कल्पित आनंद की अपेक्षा कहीं अधिक बढ़-चढ़कर था। वह दौड़ती हुई अपने घर गई और संदूक से दो सौ रुपये लाकर हरो के सामने ढेर कर दिए। यह रुपये जमा करते समय वह प्रसन्न हुई थी, पर उन्हें देते समय उससे भी अधिक प्रसन्न हुई। जो सुख त्याग में है, वह ग्रहण में कहाँ!

लाजवंती के तीर्थ-यात्रा का विचार छोड़ देने पर सारे गाँव में आग-सी लग गई। लोग कहते थे, लाजवंती ने बहुत बुरा किया। देवी माता का क्रोध उसे नष्ट कर देगा। धीरे-धीरे गाँव की यह बात लाजवंती के कानों तक भी पहुँची। उसने उनकी कुछ परवाह नहीं की, एक कान से सुना, दूसरे कान से उड़ा दिया।

रात का समय था, मंदिर में घंटे बज रहे थे। लाजवंती ने आरती का थाल उठाया और पूजा के लिए चली। मगर दरवाज़े पर पहुँचकर पाँव रुक गए।

सहसा उसने सुना, कोई प्रार्थना कर रहा था। लाजवंती का रोम-रोम कान बन गया। उसे निश्चय हो गया कि इस प्रार्थना का अवश्य ही उसके साथ संबंध है। और वह गलती पर न थी, कोई कह रहा था –

"देवी माता! उसे सदा सुहागिन रखो। उसके बेटे को चिरंजीव बनाओ। उसने एक असहाय ब्राह्मणी का मान रखा है, तुम उसको इसका फल दो! उसके बेटे और पति का बाल भी बाँका न हो! यह एक बूढ़ी ब्राह्मणी की प्रार्थना है। इसे सुनो और स्वीकार करो।"

यह ब्राह्मणी हरो थी। लाजवंती के रोम-रोम में खुशी की लहर दौड़ गई।

रात को स्वप्न में वह फिर देवी के सम्मुख थी। एकाएक देवी की मूर्ति ने अपने सिंहासन से नीचे उतरकर लाजवंती को गले से लगा लिया और कहा – "तूने एक गरीब की सेवा
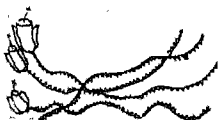
की है, मानो मेरी सेवा की है। मैं तुमसे खुश हूँ, तेरे काम से खुश हूँ। लोग तीर्थ-यात्रा करते हैं, तूने महातीर्थ-यात्रा की है। सेवा तीर्थ-यात्रा से बढ़कर है। तुझे आशीर्वाद देती हूँ।"

लाजवंती की आँख खुल गई। आज उसने पूजा का रहस्य पा लिया था।

बोध-प्रश्न

1. हेमराज के साधारण से सिर दर्द से लाजवंती क्यों बेचैन हो उठी?
2. वैद्यजी ने लाजवंती को हेम के पिता को बुलवा लेने की सलाह क्यों दी?
3. देवी माँ के मंदिर से लौटते समय लाजवंती अत्यधिक प्रसन्न क्यों थी?
4. लाजवंती की तीर्थ-यात्रा की बात सुनकर रामलाल पर कौन सी दो विपरीत प्रतिक्रियाएँ हुई थीं?
5. वैद्यजी ने लाजवंती से यह क्यों कहा — "मैं तुम्हें दूसरी सावित्री समझता हूँ?"
6. गाँव के लोगों से सहायता माँगने का प्रस्ताव माँ हरो को अपमान क्यों लग रहा था?
7. लाजवंती को रुपया जमा करने से अधिक प्रसन्नता रुपये देते समय क्यों हो रही थी?
8. "परोपकार ही सच्चा तीर्थ है" — कथानक के आधार पर सिद्ध कीजिए।
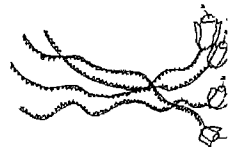
2 अगला स्टेशन

केशवचंद्र वर्मा

इस देश के तमाम लोगों की तरह मुझे भी यकीन हो रहा था कि इस देश के भविष्य का निर्माण करने का काम सिर्फ़ फिल्मों का है। जैसा संदेश लोगों में पहुँचाना हो, वैसी फ़िल्म बनाकर लोगों को दिखला दीजिए — बस, दुनिया अपने-आप बदलती चली जाएगी। इधर जैसे ही मुझे फिल्मों के ज़रिए यह संदेश मिला, कि 'समाज को बदल डालो' तैसे ही मैंने अपनी समाज-सेवा को अधिक गहरे स्तर पर करने का फ़ैसला कर लिया और मौके की तलाश करने लगा, ताकि मैं समाज को एक ही दाँव में बदल दूँ ! इस तरह के मौके रोज़-रोज़ आते नहीं, कि आपको समाज को बदल डालने का अधिकार सब लोग देते फिरें। लेकिन आदमी लगन का पक्का हो, तो समाज एक-न-एक दिन मौका देता ही है।

और इस विचार को कार्य में बदल डालने की शुरुआत मैंने रेलवे-स्टेशन से करने का शुभ संकल्प किया। ऐसा कुछ पहले से तय नहीं था, लेकिन जब अपने कुछ मेहमानों को एक पैसेंजर गाड़ी से छोड़ने के लिए स्टेशन गया, तो समाज ने मुझे अदबदाकर कुछ ऐसा मौका दे दिया कि समाज-सेवा करने के लिए मेरी तबीयत मचलने लगी। जो लोग यात्रा का सुख आज की दुनिया में भी उठाने के लिए कृतसंकल्प हैं, उन्हें रेल-व्यवस्था की एक मामूली बात तो मालूम ही होगी, फिर भी उनके लाभ के लिए मैं दोहरा रहा हूँ। रेलगाड़ियाँ कई तरह की होती हैं — डाकगाड़ी, एक्सप्रेस (तेज़) गाड़ी, पैसेंजर गाड़ी, पार्सल गाड़ी, मालगाड़ी वगैरह-वगैरह। डाकगाड़ी डाक ले जाने के लिए बनी थी, पर मुसाफ़िर भी ले जाती है। पार्सल गाड़ी पार्सल ले जाने के लिए बनी थी, अब मुसाफ़िर भी ले जाती है। मालगाड़ी सिर्फ़ माल

ले जाती है। एक 'पैसेंजर' गाड़ी यानी मुसाफ़िर गाड़ी थी, जो मुसाफ़िरों के लिए बनी थी, अब मुसाफ़िरनुमा माल ले जाती है। यानी पैसेंजर गाड़ी में जो भी मुसाफ़िर चलते हैं उन्हें रेलवे सिर्फ़ माल की तरह ढोती है। जहाँ मन आए, तहाँ रोकती है और धीरे-धीरे चलाती है, रास्तेभर बिना पंखा और बिना बत्ती का सफ़र कराती है, पुराने डिब्बों का नया किराया लेती है और चार-छ: घंटे आगे-पीछे पहुँचाती है। इसकी सुनवाई कहीं नहीं। यह मान लिया गया है कि पैसेंजर गाड़ी यानी मुसाफ़िर गाड़ी की वही नियति है। उसमें गाँव-गाँव में उतरने-चढ़ने वाला चलता है। उसके लिए न तो बैठने की जगह की ज़रूरत है, न पंखे की, न बत्ती की। और वक्त तो उसके पास अनंत होता है। उनके यहाँ वक्त के नाम पर सिर्फ़ सुबह, दोपहर, शाम और रात होती है। तो पैसेंजर गाड़ी सिर्फ़ सुबह, दोपहर, शाम या रात के वक्तों से बँधी हुई चलती है। फिर किसी को क्या शिकायत हो सकती है?

उसी पैसेंजर गाड़ी पर मैं अपने कुछ मेहमानों को छोड़ने के लिए रेलवे-स्टेशन पहुँचा। शाम को चलकर सुबह पहुँचने का वादा करती हुई इस पैसेंजर गाड़ी के हर डिब्बे में पंखे लगे हुए थे, जो मुसाफ़िरों के क्रोध की तरह शांत थे। बत्तियाँ या तो थीं ही नहीं, या दीपक राग की प्रतीक्षा कर रही थीं। तीसरे दर्जे में ठुँसे हुए मुसाफ़िर दफ्तियाँ, रूमाल और हाथ हिलाकर उस डिब्बे से गरमी को बाहर कर देना चाहते थे। अँधेरा हो रहा था, और हर मुसाफ़िर अपने से ज़्यादा अपने संदूक की फ़िक्र करने में मशगूल था। ऐसा दृश्य देखकर मुझे सहसा यह याद आने लगा कि मैं समाज को बदल डालने का वादा कर चुका हूँ और मुसाफ़िरों के जन्मसिद्‌ध अधिकार के लिए लड़ने को मुझसे अच्छा कोई आदमी नहीं हो सकता। जो लोग सफ़र करने के लिए आए हुए थे, वे भीतर घुसकर बैठ गए थे, और निकलने की कोशिश करते ही अपनी जगह पर दूसरों को बैठा हुआ देखते। वैसे उसमें से निकल पाना अपने-आप में आदमी की मर्दानगी में चार चाँद लगा देता! और निकलकर घुस पाना सिर्फ़ एक घुटी हुई चाँद का तल्ख़ अनुभव दे सकता था। ऐसे में प्लेटफ़ार्म पर खड़े हुए व्यक्तियों की ही यह नैतिक ज़िम्मेदारी हो जाती थी कि वे पैसेंजर के मालगाड़ी रूप से लोगों को परिचित कराएँ और समाज-सेवा करें। वही मैंने किया।
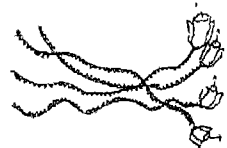
निहायत बुज़ुर्ग दीखने वाले गार्ड साहब, पान खाए हुए, एक कुचैली लाल टाई (मैली कहना मैलेपन का अपमान होगा) लगाए, आधा कोट बाँह पर डाले हुए, बाँस के छोटे-छोटे डंडों में लाल, हरी झंडियाँ लपेटकर रख रहे थे। उनका बड़ा लोहे का बक्स प्लेटफ़ार्म पर खुला हुआ था और उनको तमाम कुली-कबाड़ी घेरे खड़े थे। एक ने उनको चाय लाकर दी और वे चाय पीने लगे। मैंने समाज-सेवा के कुछ नियमों का ध्यान किया और भीड़ चीरता हुआ उनके पास पहुँचा। उनसे मैंने डिब्बों में बत्ती और पंखा न होने की शिकायत की। थोड़ी देर तक वह चुपचाप अपनी चाय पीते रहे और कुलियों को कुछ सामान लादने की हिदायत देते रहे। मैंने अपनी बात दोहराई। उन्होंने एक बार मेरी तरफ़ देखा और फिर कुलियों से बातें करने लगे। मैं जानता हूँ कि बेहयाई का गुण एक समाजसेवी में बड़ा लाज़िमी होता है। अतः मैंने फ़ौरन अपनी बात को और भी तेज़ी से गार्ड साहब के सामने दोहराया। अबकी गार्ड साहब ने पहली बार जवाब दिया "कह तो दिया साहब कि अभी सब ठीक हो जाएगा। प्लेटफ़ार्म पर बिजली वाला होगा। उससे कह दीजिए। ठीक कर देगा।"

बहरहाल, मैं आश्वासन लेकर लौट पड़ा। अपना देश ही आश्वासनों पर चल रहा है। अब अगर वह भी हटा लिया जाए, तो फिर रह ही क्या जाएगा? और फिर जब सभी लोग आश्वासनों को सही मानकर चुप बैठे रहते हैं तो मुझे पहली ही बार आश्वासन को चुनौती देना ठीक नहीं लगा। डिब्बे के सामने पहुँचा तो अपने मेहमानों ने भीतर से पूछा, "क्या हुआ?"

मैंने तड़ से अपनी कारगुज़ारी बयान कर दी, "अभी सब ठीक हुआ जाता है। पंखा भी ठीक, बिजली भी ठीक।"

एकाध इधर-उधर की बात हो सकती थी, लेकिन गाड़ी छूटने का वक्त निकट आ रहा था और मुझे लग रहा था कि गाड़ी बिना बत्ती के ही चल देगी। मैं बिजलीवाले मिस्त्री की खोज में चला। आखिरकार वह मिला। एक तेज़ दुबला-पतला लड़का प्लेटफ़ार्म की बिजली से तार लगाकर पहले दर्जे के डिब्बे में बिजली का पंखा ठीक कर रहा था। मैंने खद्दर का
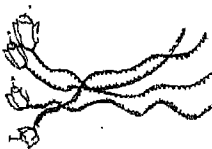
कुरता पहन रखा था। मुझे किसी से भी बात करने में डर नहीं लग रहा था। मैंने उससे उस डिब्बे की बिजली और पंखा ठीक करने को कहा। उसने पहली ही बार में उत्तर दिया, "पंखा-वंखा नहीं चलेगा। बिजली भी रामभरोसे है।"

मैंने कहा, "गार्ड साहब ने कहा है।"

"तो उन्हीं से ठीक करा लीजिए।"

मैं गार्ड साहब की तरफ़ लपका। अब तो कुछ आन का भी सवाल था। डिब्बे के सामने लौटकर जाता तो क्या मुँह दिखाता? वे लोग फिर वही सवाल पूछते। गार्ड साहब ने अपनी हरी बत्ती भी ठीक-ठाक कर ली थी। पान खा रहे थे। भीड़ वैसी ही थी। मैंने फिर गार्ड साहब से अपनी मुसीबत दोहराई और उस लड़के मिस्त्री की शिकायत की। गार्ड साहब ने अपनी आदत के मुताबिक तीसरी बार में मेरी शिकायत पर कान दिया। अबकी नए सिलसिले से बातचीत हुई।

"कहाँ जा रहे हैं आप?"

"मैं नहीं जा रहा हूँ।"

"तो फिर आप गाड़ी के पंखे और बिजली को लेकर क्यों परेशान हैं? जिन्हें जाना है, वह तो आराम से चुप किए बैठे हैं। आप खाहमखाह के क़ाज़ी बने हुए हैं।"

"जी नहीं। खाहमखाह के नहीं। मेरे घरवाले इस गाड़ी से जा रहे हैं। उन्हें बड़ी परेशानी होगी।"

"रास्ते में बिजली ठीक हो जाएगी। अब तो गाड़ी छूटने का वक्त हो रहा है। देर हो जाएगी यहाँ पर। अगले स्टेशन पर ठीक करा देंगे।"

"अगला स्टेशन तो गाँव है। वहाँ मिस्त्री कहाँ मिलेगा?"

"अजी साहब, गाड़ी मैं ले जा रहा हूँ। मैं नहीं जानता, और आप सब कुछ जानते हैं।"

अब गार्ड साहब ने जैसे मुझे धमकाने के लिए मुँह में सीटी दबा ली और हाथ में हरी बत्ती वाली लालटेन उठा ली। वैसे झंडी पहले ही से खुली हुई थी। मैं भी समाज-सेवा पर तुला
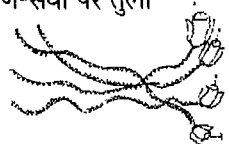
बैठा था। बोला, "देखिए, गार्ड साहब, जब तक पंखा और बत्ती ठीक नहीं होती, गाड़ी यहाँ से नहीं चल सकती। समझ लीजिए।"

"अरे साहब, ठीक हो जाएगा, सब ठीक हो जाएगा। आप चलिए, बैठिए। मैं अभी आता हूँ उस डिब्बे के पास।"

मेरे मेहमान खिड़की से सिर निकाले मुझे बुला रहे थे। गाड़ी छूट जाएगी, और चलते वक्त एक टा-टा नहीं कह पाएँगे। लेकिन "टा टा" को देखें कि अब सरीहन अपनी बेइज़्ज़ती को देखें। गार्ड साहब टहलते हुए आगे बढ़े। उनके साथ पूरा जमघट। हमारे डिब्बे के सामने से वे निकले। हम भी उन्हीं के साथ-साथ चल रहे थे। मैंने मेहमानों को डिब्बे के सामने से निकलते हुए यों देखा, "मैं चाहूँ तो पूरी दुनिया को हिलाकर रख दूँ।" गार्ड साहब आगे बढ़कर किसी के पास रुक गए और बोले, "क्या बात है, भई! बत्ती-पंखा क्यों नहीं ठीक कर देते?"

मिस्त्री लड़का ताव में था। "मैं क्या खुद पंखा बन जाऊँ, गार्ड साहब? जब उसमें पावर है ही नहीं, तो..."

गार्ड साहब ने निहायत नरमी से कहा, "अरे भाई, तेज़ पड़ने की क्या ज़रूरत है? बात क्या है?"

उसने कहा, "क्या करें, साहब? अभी पुराने चार्जर पर इंक्वायरी हो रही है। कहते हैं, कि जब आएगा, तब मिलेगा। तो हम क्या करें? जितना है, उतना फर्स्ट क्लास में किए दे रहे हैं। गाड़ी चलेगी और कुछ चार्ज हो गया, तो बत्ती में करंट चली आएगी। रोशनी तो होगी नहीं, सिर्फ़ लाल लकीर दिखाई देगी। पंखा-वंखा कुछ नहीं चलेगा। मेरी कोई सुनता नहीं।... सब मेरे पीछे पड़े हुए हैं।"

भीड़ ने मज़ा लेना शुरू कर दिया था। 'एंग्री यंगमैन' चिल्ला रहा था। सब मेरी तरह ही जान रहे थे कि अब गार्ड साहब की किरकिरी हो जाएगी। तब तक गार्ड साहब बोले, "कितने साल से नौकरी कर रहे हो, म्याँ?"

"तीन साल से।"
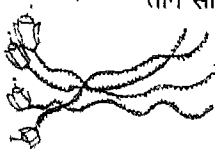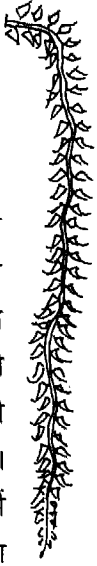
"तभी! तभी अभी इतनी तेज़ी है। अरे बाबू साहब, यह सब कोई नई बात तो नहीं, मैंने तो सोचा, कि न जाने क्या बावेला आपने मचा दिया। तीन साल से तुम इस गाड़ी को आते-जाते देख रहे हो। कभी तुमने इसमें पंखा चलते देखा या कभी बत्ती जलती देखी? नहीं न? फिर आज इस चीज़ को लेकर इतना गरम होने की क्या ज़रूरत पड़ गई? मुसाफ़िरों से तो दो बोल मीठे-मीठे बोल ही सकते हो। कह दो कि 'बत्ती' आगे ठीक हो जाएगी। पंखा अभी चलाए देते हैं। तुम भी जानते हो और हम भी जानते हैं कि न तो पंखा चलेगा, और न रास्ते भर बत्ती जलेगी। ये मुसाफ़िर भी यह जानते हैं। ये भी अँधेरे में बिना पंखे के चलने के आदी हैं। लेकिन अब इनका भी तो कुछ फर्ज़ है कि डिब्बे में पंखा नहीं चल रहा तो आकर किसी से कहें। अब हमारा-तुम्हारा यह फर्ज़ है कि बिना पंखा-बत्ती चलाए हुए इन्हें खुश कर दें। इसमें गाली-गलौज करने से मुसाफ़िर बिगड़ता है और बात कुछ बनती नहीं। अब चार्जर नहीं है, तो तुम क्या हमारे बाप भी डिब्बे में बिजली नहीं दे सकते। पर यह कहने में क्या लगता है, कि अगले स्टेशन पर ठीक हो जाएगी? औवल तो म्यां, वह 'अगला स्टेशन' पूरे सफ़र में कभी आता नहीं। और अगर किसी ने याद भी दिलाया तो तुम तो छूट जाओगे। मैं निबट लूँगा। रोज़ इसी 'अगले स्टेशन' के भरोसे मैं गाड़ी यहाँ से लेकर चला जाता हूँ। मुसाफ़िरों से तुम 'अगले स्टेशन' का ख्वाब भी छीन लोगे तो बेटे, गाड़ी किसके भरोसे चलेगी?"

मिस्त्री के पास कोई जवाब न था। गार्ड साहब ने सीटी बजा दी और झंडी और रोशनी हिलाना शुरू कर दिया। मेरे पास शिकायत दोहराने का वक्त नहीं था। कुछ डिब्बों से निकले हुए मुसाफ़िर गाड़ी लेट होने की वजह मुझी को बताते हुए मुझे धिक्कार रहे थे और चुपचाप अपने डिब्बे में लौट जाने के लिए कह रहे थे।
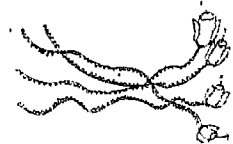
बोध-प्रश्न

1. लेखक ने समाज-सेवा करने का निर्णय क्यों लिया?
2. लेखक ने रेलवे स्टेशन से ही समाज-सेवा के कार्य का शुभारंभ करने की क्यों सोची?
3. अन्य गाड़ियों की तुलना में लेखक ने पैसेंजर गाड़ी की क्या-क्या विशेषताएँ बताई हैं?
4. तीसरे दर्जे की दयनीय स्थिति के बावजूद मुसाफ़िर क्यों शांत थे?
5. लेखक यह क्यों मानता है कि मुसाफ़िरों के अधिकारों के लिए लड़ने को उससे अच्छा आदमी और कोई नहीं हो सकता?
6. गार्ड बाबू ने बिजली-मिस्त्री को क्या सलाह दी और क्यों?
7. यह लेख हमारी कार्यप्रणाली पर तीखा व्यंग्य है। पाठ में आए कुछ प्रसंगों को चुनकर, इस कथन की सार्थकता सिद्ध कीजिए।
8. इस पाठ का शीर्षक 'अगला स्टेशन' क्यों रखा गया है?
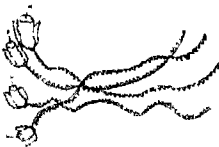
3 सड़क की बात

रवींद्रनाथ ठाकुर

मैं सड़क हूँ। शायद किसी के शाप से चिरनिद्रित सुदीर्घ अजगर की भाँति वन-जंगल और पहाड़-पहाड़ियों से गुज़रती हुई पेड़ों की छाया के नीचे से और दूर तक फैले हुए मैदानों में ऊपर से देश-देशांतरों को घेरती हुई बहुत दिनों से बेहोशी की नींद सो रही हूँ। जड़ निद्रा में पड़ी-पड़ी मैं अपार धीरज के साथ अपनी धूल में लोटकर शाप की आखिरी घड़ियों का इंतज़ार कर रही हूँ । हमेशा से जहाँ-तहाँ स्थिर हूँ, अविचल हूँ, हमेशा से एक ही करवट सो रही हूँ, इतना भी सुख नहीं कि अपनी इस कड़ी और सूखी सेज पर एक भी मुलायम हरी घास या दूब डाल सकूँ। इतनी भी फुरसत नहीं कि अपने सिरहाने के पास एक छोटा-सा नीले रंग का वन-फूल भी खिला सकूँ।

मैं बोल नहीं सकती पर अंधे की तरह सब कुछ महसूस कर सकती हूँ । दिन-रात पैरों की ध्वनि, सिर्फ़ पैरों की आहट सुना करती हूँ । अपनी इस गहरी जड़ निद्रा में लाखों चरणों के स्पर्श से उनके हृदयों को पढ़ लेती हूँ , मैं समझ जाती हूँ कि कौन घर जा रहा है, कौन परदेश जा रहा है, कौन काम से जा रहा है, कौन आराम करने जा रहा है, कौन उत्सव में जा रहा है, और कौन श्मशान को जा रहा है। जिसके पास सुख की घर-गृहस्थी है, स्नेह की छाया है, वह हर कदम पर सुख की तसवीर खींचता है, आशा के बीज बोता है। जान पड़ता है, जहाँ-जहाँ उसके पैर पड़ते हैं, वहाँ-वहाँ क्षण भर में मानो एक-एक लता अंकुरित और पुष्पित हो उठेगी । जिसके पास घर नहीं, आश्रय नहीं, उसके पदक्षेप में न आशा है, न अर्थ है, उसके कदमों में न दायाँ है, न बायाँ है, उसके पैर कहते हैं, मैं चलूँ तो क्यों, और ठहरूँ तो किसलिए ? उसके कदमों से मेरी सूखी हुई धूल मानो और भी सूख जाती है।

संसार की कोई भी कहानी मैं पूरी नहीं सुन पाती । आज सैकड़ों हज़ारों वर्षों से मैं लाखों-करोड़ों लोगों की कितनी हँसी, कितने गीत, कितनी बातें सुनती आई हूँ । पर थोड़ी सी बात सुन पाती हूँ । बाकी सुनने के लिए जब कान लगाती हूँ तब देखती हूँ कि वह आदमी ही नहीं रहा । इस तरह न जाने कितने युगों की कितनी टूटी-फूटी बातें और बिखरे हुए गीत मेरी धूल के साथ धूल बन गए हैं और धूल बनकर अब भी उड़ते रहते हैं।

वह सुनो गा रही है — कहते कहते कह नहीं पाई । आह, ठहरो, ज़रा गीत को पूरा कर जाओ, पूरी बात तो सुन लेने दो मुझे, पर कहाँ ठहरी वह? गाते-गाते न जाने कहाँ चली गई? आखिर तब मैं सुन ही नहीं पाई । बस आज आधी रात तक उसकी पग-ध्वनि मेरे कानों में गूँजती रहेगी । मन ही मन सोचूँगी कौन थी वह? कहाँ जा रही थी न जाने? जो बात न कह पाई उसी को फिर कहने गई । अब की बार जब फिर उससे भेंट होगी, वह जब मुँह उठाकर इसके मुँह की तरफ़ ताकेगा, तब "कहते-कहते" फिर "कह नहीं पाई" तो?

समाप्ति और स्थायित्व शायद कहीं होगा, पर मुझे तो नहीं दिखाई देता । एक चरण-चिह्न को भी तो मैं ज़्यादा देर तक नहीं रख सकती । मेरे ऊपर लगातार चरण-चिह्न पड़ रहे हैं, पर नए पाँव आकर पुराने चिह्नों को पोंछ जाते हैं। जो चला जाता है वह तो पीछे कुछ छोड़ ही नहीं जाता । कदाचित उसके सिर के बोझ से कुछ मिलता भी है तो हज़ारों चरणों के तले लगातार कुचला जाकर कुछ ही देर में वह धूल में मिल जाता है।

मैं किसी का भी लक्ष्य नहीं हूँ । सबका उपाय मात्र हूँ । मैं किसी का घर नहीं हूँ पर सबको घर ले जाती हूँ। मुझे दिन-रात यही संताप सताता रहता है कि मुझ पर कोई तबीयत से कदम नहीं रखना चाहता । मुझ पर कोई खड़ा रहना पसंद नहीं करता । जिनका घर बहुत दूर है, वे मुझे ही कोसते हैं और शाप देते रहते हैं। मैं जो उन्हें परम धैर्य के साथ उनके घर के द्वार तक पहुँचा देती हूँ, इसके लिए कृतज्ञता कहाँ पाती हूँ ? वे अपने घर आराम करते हैं, घर पर आनंद मनाते हैं, घर में उनका सुख-सम्मिलन होता है, बिछुड़े हुए सब मिल जाते हैं, और मुझ पर केवल थकावट का भाव दरसाते हैं, केवल अनिच्छाकृत श्रम हुआ समझते
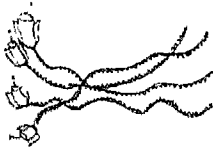
हैं, मुझे केवल विच्छेद का कारण मानते हैं। क्या इसी तरह बार-बार दूर ही से घर के झरोखे में से पंख पसार कर बाहर आती हुई मधुर हास्य-लहरी मेरे पास आते ही शून्य में विलीन हो जाया करेगी? घर के उस आनंद का एक कण भी, एक बूँद भी मैं नहीं पाऊँगी?

कभी-कभी वह भी पाती हूँ । छोटे-छोटे बच्चे जो हँसते-हँसते मेरे पास आते हैं और शोर गुल मचाते हुए मेरे पास आकर खेलते हैं, अपने घर का आनंद वे मेरे पास ले आते हैं। उनके पिता का आशीर्वाद और माता का स्नेह घर से बाहर निकलकर, मेरे पास आकर सड़क पर ही मानो अपना घर बना लेता है। मेरी धूल में वे स्नेह दे जाते हैं, प्यार छोड़ जाते हैं। मेरी धूल को वे अपने वश में कर लेते हैं और अपने छोटे-छोटे कोमल हाथों से उसकी ढेरी पर हौले-हौले थपकियाँ दे-देकर परम स्नेह से उसे सुलाना चाहते हैं। अपना निर्मल हृदय लेकर बैठे-बैठे वे उसके साथ बातें करते हैं। हाय-हाय, इतना स्नेह, इतना प्यार पाकर भी मेरी यह धूल उसका जवाब तक नहीं दे पाती । मेरे लिए कैसा शाप है यह!

छोटे-छोटे कोमल पाँव जब मेरे ऊपर से चले जाते हैं, तब अपने को मैं बड़ी कठिन अनुभव करती हूँ, मालूम होता है उनके पाँवों में लगती होगी। उस समय मुझे कुसुम कली की तरह कोमल होने की साध होती है। अरुण चरण ऐसी कठोर धरती पर क्यों चलते हैं? किंतु, यदि न चलते तो शायद कहीं भी हरी-हरी घास पैदा न होती ।

प्रतिदिन नियमित रूप से जो मेरे ऊपर चलते हैं, उन्हें मैं अच्छी तरह पहचानती हूँ । पर वे नहीं जानते कि उनके लिए मैं कितनी प्रतीक्षा किया करती हूँ । मैं मन ही मन कल्पना कर लेती हूँ । बहुत दिन हुए, ऐसी ही एक प्रतिमा अपने कोमल चरणों को लेकर दोपहर को बहुत दूर से आती, छोटे-छोटे दो नूपुर रुनझुन-रुनझुन करके उसके पाँव में रो-रोकर बजते रहते । शायद उसके ओठ बोलने के ओठ न थे, शायद उसकी बड़ी-बड़ी आँखें संध्या के आकाश की भाँति म्लान दृष्टि से किसी के मुँह की ओर देखती रहतीं ।

ऐसे कितने ही पाँवों के शब्द नीरव हो गए हैं। मैं क्या उनकी याद रख सकती हूँ ? सिर्फ़ उन पाँवों की करुण नूपुर-ध्वनि अब भी कभी-कभी याद आ जाती है। पर मुझे क्या
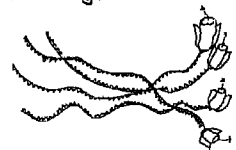
घड़ी भर भी शोक या संताप करने की छुट्टी मिलती है ? शोक किस-किसके लिए करें ? ऐसे कितने ही आते हैं और चले जाते हैं।

उफ कैसा कड़ा घाम है ! एक बार साँस छोड़ती हूँ और तपी हुई धूल सुनील आकाश को धुआँधार करके उड़ी चली जाती है। अमीर और गरीब, जन्म और मृत्यु सब कुछ मेरे ऊपर एक ही साँस में धूल के स्रोत की तरह उड़ता चला जा रहा है। इसलिए सड़क के न हँसी है, न रोना। मैं अपने ऊपर कुछ भी पड़ा रहने नहीं देती, न हँसी, न रोना, सिर्फ़ मैं ही अकेली पड़ी हुई हूँ और पड़ी रहूँगी।

बोध-प्रश्न

1. सड़क शापमुक्ति की कामना क्यों कर रही है?
2. सड़क लोगों के कदमों की आहट से क्या-क्या जान जाती है?
3. सड़क संसार की कोई भी कहानी पूरी क्यों नहीं सुन पाती?
4. सड़क किसी का भी लक्ष्य क्यों नहीं है?
5. बच्चों की स्नेहाभिव्यक्ति पर सड़क के मन में एक साथ कौन-कौन से विरोधी भाव उमड़ते हैं?
6. सड़क नियमित रूप से अपने पर चलने वालों की प्रतीक्षा क्यों करती है?
7. लेखक ने सड़क का मानवीकरण किया है। सड़क का कौन-सा मनोभाव आपको अधिक हृदयस्पर्शी लगा और क्यों?
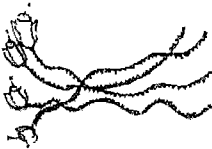
4 साए

हिमांशु जोशी

नन्हे-नन्हे दुधमुँहे बच्चे! अकेली रुग्ण पत्नी! नाते-रिश्ते का ऐसा कोई नहीं, जो ज़रूरत पर काम आ सके! पति अफ्रीका में, अस्पताल में बीमार! महीनों तक कोई पत्र नहीं...

हर रोज़ वे रंग-बिरंगे टिकटों वाले पत्र की राह देखते, परंतु डाकिया भूल से भी इधर झाँकता न था।

हाँ, बहुत लंबे अरसे बाद एक पत्र, एक दिन मिला। बड़ा अजीब-सा था वह। बड़ा करुण। बड़ा दर्दभरा। नैरोबी के किसी अस्पताल से । लिखा था, रंग-भेद के कारण पहले यूरोपियन लोगों के अस्पताल में जगह नहीं मिली, किंतु बाद में कुछ कहने-कहलाने पर स्थान तो मिला किंतु इस अनावश्यक विलंब के कारण रोग काबू से बाहर हो गया है। डॉक्टरों ने ऑपरेशन की सलाह दी है किंतु उसमें भी अब सार लगता नहीं। चंद दिनों की मेहमानदारी है...। उसके बाद तुम लोगों का क्या होगा, कुछ सूझता नहीं। पास होते तो... लेकिन...भरोसा रखना...भगवान सब का रखवाला है...जिसने पैदा किया है, वह परवरिश भी करेगा...

पत्नी पत्र पढ़ती। रोती। अबोध बच्चे रुलाई-भरी आँखों से माँ का मुँह ताकते।

फिर चिट्ठी पर चिट्ठियाँ डालीं उन्होंने, फिर तार, तब कहीं केन्या की मोहर लगा एक विदेशी लिफ़ाफ़ा मिला। लिखा था, परमात्मा का ही चमत्कार है कि हालत सुधर रही है। एक नया जन्म मिला है...

थोड़े दिनों बाद फिर पत्र आया, पहले की ही तरह किसी से बोलकर लिखवाया हुआ— हालत पहले से अच्छी है। चिंता की अब कोई बात नहीं।

हमेशा की तरह कुछ रुपये भी पहुँच गए इस बार।

बच्चों के मुरझाए मुखड़े खिल उठे। रुग्ण पत्नी का स्वास्थ्य तनिक सुधार की ओर बढ़ा। चिट्ठियाँ नियमित रूप से आती रहीं। रुपये भी पहुँचते रहे।

उसने लिखा था, हाथ के ऑपरेशन के बाद अब वह पत्र नहीं लिख पाता, इसलिए किसी से लिखवा लेता है। इधर एक नया टाइपराइटर खरीद लिया है उसने। अपने कारोबार का भी कुछ विस्तार कर रहा है – धीरे-धीरे। कुछ नई ज़मीन खरीदने का भी इरादा है – शहर के पास। एक 'फ़ार्म हाउस' की योजना है...

घर के बारे में, पत्नी के बारे में, बच्चों की पढ़ाई के बारे में कितने ही प्रश्न थे। बड़ी उत्साहजनक बातें थीं – विस्तार से। इतना अच्छा पत्र पहले कभी भी न आया था। सबको स्वाभाविक रूप से प्रसन्नता हुई।

डूबती नाव फिर पार लग रही थी – धीरे-धीरे।

लगभग तीन बरस बीत गए।

घर की ओर से पत्र पर पत्र जाते रहे कि अब उसे थोड़ा-सा समय निकालकर कभी घर भी आना चाहिए। बच्चे उसे बहुत याद करते हैं। उसे देखने-भर को तरसते हैं। जो-जो हिदायतें चिट्ठियों में लिखी रहती हैं, उनका अक्षरशः पालन करते हैं। माँ को किसी किस्म का कष्ट नहीं देते। कहना मानते हैं। पढ़ने में बहुत मेहनत करते हैं। अज्जू कहता है कि बड़ा होकर वह भी पापा की तरह अफ्रीका जाएगा। इंजीनियर बनेगा। पापा के साथ खूब काम करेगा। अब वह पूरे बारह साल का हो गया है। छठी कक्षा में सबसे अव्वल आया है। मास्टर जी कहते हैं कि उसे वजीफ़ा मिलेगा। उसी से अपनी आगे की पढ़ाई जारी रख सकता है। तनु अब अठारह पार कर रही है। उसका भी ब्याह करना है। कहीं कोई अच्छा-सा लड़का, अपनी जात-बिरादरी का मिले तो चल सकता है...
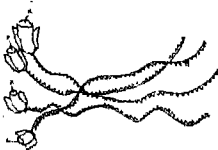
चिट्ठी के जवाब में बहुत-सी बातें थीं। लिखा था कि इस समय तो नहीं, हाँ, अगले साल तनु के ब्याह पर अवश्य पहुँचेगा। योग्य वर तो यहाँ भी मिल सकते हैं, पर विदेश में, अफ्रीका जैसे देश में, लड़की को ब्याहने के पक्ष में वह नहीं है। दहेज की चिंता न करना। वहीं वर की खोज करना।

वर की तलाश में अधिक भटकने की आवश्यकता न हुई। आसानी से खाता-पीता घर मिल गया। शायद इतना अच्छा घराना न मिलता लेकिन इस भरम से कि कन्या का बाप अफ्रीका में सोना बटोर रहा है, सब सहज हो गया। शादी की तिथि निश्चित हो गई। नैरोबी से पत्र आया कि वह समय पर पहुँच रहा है। गहने, कपड़े सब बनाकर वह साथ लाएगा। लेकिन शादी के समय वह चाहकर भी पहुँच नहीं पाया। विवशताओं से भरा लंबा पत्र आया कि इस बीच जो एक नया कारोबार शुरू किया है, उसमें मज़दूरों की हड़ताल चल रही है। ऐसे संकट के समय में यह सब छोड़कर वह कैसे आ सकता है! हाँ, गहने, कपड़े और रुपये भिजवा दिए हैं। वर-वधू के चित्र उसे अवश्य भेजें, वह प्रतीक्षा करेगा।

खैर, ब्याह हो गया, धूमधाम के साथ। विवाह के सारे चित्र भी भेज दिए।

अज्जू ने इस वर्ष कई इनाम जीते। हाई स्कूल की परीक्षा में ज़िले में सर्वप्रथम रहा। खेलों में भी पहला। बहुत-से सर्टिफ़िकेट मिले, वजीफ़ा मिला। इनाम में मिली सारी वस्तुओं के फ़ोटो वे पापा को भेजना न भूले।

बदले में कीमती कैमरा आया। गरम सूट का कपड़ा आया। सुंदर घड़ी आई। और मर्मस्पर्शी लंबा पत्र आया। लिखा था कि वह बच्चों की उम्मीद पर ही जी रहा है। पत्नी का स्वास्थ्य अच्छा रहना चाहिए। बच्चे इसी तरह नाम रौशन करते रहें – उनके सहारे वह जिंदगी की डोर कुछ लंबी खींच लेगा...यह सारा कारोबार सब उन्हीं के लिए तो है।

पर, अनेक वादे करने पर भी घर आना संभव न हो पाता। हर बार कुछ-न-कुछ अड़चनें आ जातीं और उसका आना स्थगित हो जाता।

पाँवों पर पंख बाँधकर समय उड़ता रहा, अबाध गति से।
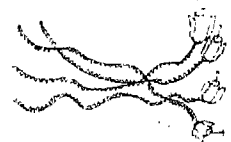
बच्चों ने लिखा कि यदि उसका इधर आ पाना कठिन हो रहा है तो वे ही सब अफ़्रीका आने की सोच रहे हैं। कुछ वर्ष वहीं बिता लेंगे।

उत्तर में केवल इतना ही था कि काम बहुत बढ़ गया है। नैरोबी, मोम्बासा के अलावा अन्य स्थानों पर भी उसे नियमित रूप से जाना पड़ता है। यहाँ की आबोहवा, बच्चों की पढ़ाई, अनेक प्रश्न थे। अज्जू जब तक अपनी पढ़ाई पूरी नहीं कर लेता, तब तक कुछ नहीं हो सकता । समय निकालकर कभी वह स्वयं घर आने का प्रयास करेगा। बच्चों की बहुत याद आती है। घर की बहुत याद आती है। लेकिन, विवशता के लिए क्या किया जाए !

अंत में एक दिन वह भी आ पहुँचा जब अज्जू ने अपनी पढ़ाई पूरी कर ली। कहीं अच्छी नौकरी की तलाश शुरू हुई। पर पिता के अब भी घर आने की संभावना न दीखी तो उसने लिखा – अम्मा बीमार रहती हैं। बहुत कमज़ोर हो गई हैं। एक बार, अंतिम बार देखना भर चाहती हैं।

प्रत्युत्तर में विस्तृत पत्र मिला। इलाज के लिए रुपये भी। परंतु इस बार अज्जू ने ही जाने का कार्यक्रम बना लिया। अकस्मात पहुँचकर पापा को चौंकाने की पूरी-पूरी योजना।

टिकट खरीद लिया। पासपोर्ट, वीसा भी सब देखते-देखते बन गया। और एक दिन दिल्ली से वह विमान से रवाना भी हो गया।

उसके मन में गहरी उत्कंठा थी कि पापा उसे देखकर कितने चकित होंगे! उन्होंने कल्पना भी न की होगी कि एकाएक वह इतनी दूर, एक दूसरे देश में इतनी आसानी से आ जाएगा! उनकी निगाहों में तो अभी वह उतना ही छोटा होगा, जब वह निक्कर पहनकर आँगन में गुल्ली-डंडा खेलता था।

नैरोब़ी के हवाई अड्डे पर उतरकर वह सीधा उस पते पर गया, जो पत्र में दिया हुआ था। परंतु वहाँ ताला लगा था। हाँ, उसके पिता की पुरानी, धुँधली नेम-प्लेट अवश्य लगी थी।
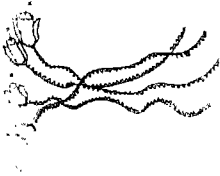
आसपास पूछताछ की तो पता चला कि एक वृद्ध भारतीय आप्रवासी अवश्य यहाँ रहते हैं। रात को देर से दफ़्तर से घर लौटते हैं। किसी से मिलते-जुलते नहीं। निपट अकेले हैं।

वह बाहर बरामदे में रखी बेंच पर बैठा प्रतीक्षा करता रहा।

रात को एक बूढ़ा व्यक्ति ताला खोलने लगा तो देखा – एक युवक सामान के सामने बैठा ऊँघ रहा है।

उसका नाम-धाम पूछा तो उसे अपनी बाँहों में भर लिया।

बड़े उत्साह से उसने स्वागत किया।

भोजन के बाद वह उसे अपने कमरे में ले गए। दीवार की ओर उन्होंने इंगित किया— एक नन्हा बच्चा माँ की गोद में ढुलका किलक रहा है।

"यह किसका चित्र है?"

युवक ने गौर से देखा और कुछ झेंपते हुए कहा, "मेरा।"

वृद्ध इस बार कुछ और ज़ोर से खिलखिलाए, "मेरे बच्चे, तुम इतने बड़े हो गए हो! सच, कितने साल बीत गए ! जैसे कल की बात हो!" उन्होंने उसके चेहरे की ओर देखा, "तुम शायद नहीं जानते, तुम्हारे पिता का मैं कितना जिगरी दोस्त हूँ। कितने लंबे समय तक हम साथ-साथ रहे, दो दोस्तों की तरह नहीं, सगे भाइयों की तरह। उसी ने मुझे हिंदुस्तान से यहाँ बुलाया था। बड़ी लगन से सारा काम सिखलाया। साथ-साथ साझे में हमने यह कारोबार शुरू किया। नैरोबी की आज यह एक बहुत अच्छी फ़र्म है। यह सब उसी की बदौलत है..." कहते-कहते वह ठिठक गए।

उसका हाथ अपने हाथों में थामते हुए बोले, "तुम्हारी माँ कैसी हैं?"

"अच्छी हैं..."

"भाई-बहन?"

"सब ठीक हैं।"
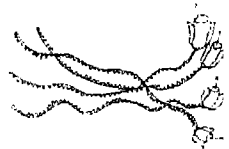
"कहीं कोई कठिनाई तो नहीं है?"

"ना। सब ठीक है।"

"बस, यही मैं चाहता था। यही।" हौले से उन्होंने हाथ सहलाया। देर तक शून्य में पलकें टिकाए कुछ सोचते रहे । कुछ क्षणों का मौन भंग कर खोए-खोए-से बोले, "देखो बेटे, तिनकों के सहारे तो हर कोई जी लेता है। लेकिन, कभी-कभी हम तिनकों के साए मात्र के आसरे, भँवर से निकलकर किनारे पर आ लगते हैं। हमारा जीवन कुछ ऐसे ही तंतुओं के सहारे टिका रहता है। यदि वे टूट जाएँ, छिन्न-भिन्न होकर बिखर जाएँ, तो पल-भर में पानी के बुलबुलों की तरह सब समाप्त हो जाता है..."

"बस, यही मैं चाहता था। यही।" वह खाँसे, "अगर तुम्हारे पिता की मृत्यु आज से 10-15 साल पहले हो जाती, तो क्या होता! भले ही वह एक अच्छी रकम तुम्हारे नाम छोड़ जाते।" उन्होंने युवक के असमंजस में डूबे, गंभीर चेहरे की ओर देखा, "रुपये रेत में गिरे पानी की तरह कहीं विलीन हो जाते। और तुम अनाथ हो जाते। तुम्हारी माँ घुल-घुलकर कब की मर चुकी होती। तुम इतने हौसले से पढ़ नहीं पाते। जहाँ तुम आज हो, वहाँ तक नहीं पहुँच पाते। निराशा की, हताशा की, असुरक्षा की इतनी गहरी खाई में होते कि वहाँ से अँधेरे के अलावा और कुछ भी न दीखता तुम्हें...।"

उन्होंने अपने सूखे होंठों को जीभ की नोक से भिगोया, "हम दुर्बल होते हुए... असहाय, अकेले होते हुए भी कितने-कितने बीहड़ बनों को पार कर जाते हैं, सहारे की एक अदृश्य डोर के सहारे..." उनका गला भर आया, "तुम्हारे पिता तो तभी गुज़र गए थे। अपने साझे कारोबार से, उनके ही हिस्से के पैसे तुम्हें नियमित रूप से भेजता रहा। कितने वर्षों से मैं इसी दिन के इंतज़ार में था...अब तुम बड़े हो गए हो। अपने इस कारोबार में मेरा हाथ बँटाओ। तुम सरसब्ज़ हो गए, मेरा वचन पूरा हो गया जो मैंने उसे मरते समय दिया था...," उनका गला भर आया। डबडबाई आँखों से वह दीवार पर टँगे एक धुँधले-से चित्र की ओर न जाने क्या-क्या सोचते हुए देखते रहे।

बोध-प्रश्न

1. नैरोबी के अस्पताल से आए पत्र को पढ़कर पत्नी परेशान क्यों हो उठी?
2. पुत्री के लिए भारत में ही वर तलाश करने की सलाह क्यों दी गई?
3. कैमरे के साथ भेजे गए पत्र को मर्मस्पर्शी क्यों कहा है?
4. पढ़ाई पूरी करने के बाद अज्जू ने अफ्रीका जाने का निर्णय किन-किन कारणों से किया?
5. वृद्ध व्यक्ति ने अज्जू और उसके परिवार की देखभाल में क्या भूमिका निभाई और क्यों?
6. परिवार को उसकी मृत्यु की सूचना नहीं दी। आपके विचार से यह कहाँ तक उचित था?
7. वृद्ध व्यक्ति के इस कथन की सार्थकता पर प्रकाश डालिए कि 'कभी-कभी हम तिनकों के साए मात्र के आसरे भँवर से निकलकर किनारे आ लगते हैं।'
8. इस कहानी के लिए और कौन-सा शीर्षक उचित हो सकता है और क्यों?
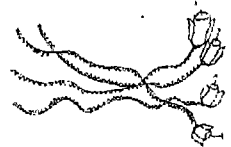
5 | निक्की, रोज़ी और रानी

महादेवी वर्मा

मेरे अतीत बचपन के कोहरे में जो रेखाएँ अपने संपूर्ण ममत्व के विविध रंगों में उदय होने लगती हैं, उनके आधारों में, तीन ऐसे भी जीव हैं, जो मानव समष्टि के सदस्य न होने पर भी मेरी स्मृति में छपे-से हैं। निक्की नेवला, रोज़ी कुत्ती और रानी घोड़ी।

रोज़ी की जैसे ही आँखें खुलीं, वैसे ही वह, मेरे पाँचवें जन्म-दिन पर, पिताजी के किसी राजकुमार विद्यार्थी द्वारा मुझे उपहार रूप में भेंट कर दी गई। स्वाभाविक ही था कि हम दोनों साथ ही बढ़ते। रोज़ी मेरे साथ दूध पीती, मेरे खटोले पर सोती, मेरे लकड़ी के घोड़े पर चढ़कर घूमती और मेरे खेलकूद में साथ देती। वस्तुतः मेरे पशु-प्रेम का आरंभ रोज़ी के साहचर्य से ही माना जा सकता है, जो तेरह वर्ष की लंबी अवधि तक अविच्छिन्न रहा।

रोज़ी सफ़ेद थी किंतु उसके छोटे सुडौल कानों के कोने, पूँछ का सिरा, माथे का मध्य भाग और पंजों का अग्रांश कत्थई रंग का होने के कारण उसमें कत्थई किनारीवाली सफ़ेद साड़ी की धवल रंगीनी का आभास मिलता था। वह छोटी पर तेज़ टैरियर जाति की कुत्ती थी और कुछ प्रकृति से और कुछ हमारे साहचर्य से श्वान दुर्लभ विशेषताएँ उत्पन्न हो जाने के कारण घर में उसे बच्चों के समान ही वात्सल्य मिलता था। हम सबने तो उसे ऐसा साथी मान लिया था जिसके बिना न कहीं जा सकते थे और न कुछ खा सकते थे।

उस समय पिताजी इंदौर के डेली कालेज (जो राजकुमारों का विद्यालय था) के वाइस प्रिंसिपल थे और हम सब छावनी में रहते थे जहाँ दूर तक कोई बस्ती ही नहीं थी। हमें पढ़ाने वाले शिक्षक प्रातः और संध्या समय आते थे। इस प्रकार दोपहर का समय हमारे लिए अवकाश का समय था, जिसे हम अति व्यस्तता में बिताते थे।

सबसे छोटा भाई तो हमारी व्यस्तता में साथ देने के लिए बहुत छोटा था परंतु, मैं, मुझसे छोटी बहिन और उससे छोटा भाई दोपहर भर बया चिड़ियों के घोंसलें तोड़ते, बबूल की सूखी और बीजों के कारण बजने वाली छीमियाँ बीनते घूमते रहते। ग्रीष्म में जब हवा ठहर-सी जाती थी, वर्षा में जब वातावरण गल कर बरसने-सा लगता था और शीत में जब समय जम-सा जाता था, हमारी व्यस्तता एकरस क्रियाशील रहती थी।

घूमते-घूमते थक जाने पर हमारा प्रिय विश्रामालय आम के वृक्षों से घिरा एक सूखा पोखर था, जिसका ऊँचा कगार पेड़ों की छाया में 8-9 फुट और खुली धूप में 4-5 फुट के लगभग गहरा था। कोई-कोई आम के पेड़ों की शाखाएँ लंबी, नीची और सूखे पोखर पर झूलती-सी थीं। सूखी पत्तियों ने झर-झर कर सूखी गहराई को कई फुट भर भी डाला था। हम तीनों डाल पर बैठकर झूलते रहते या राबिंसन क्रूसो के समान अपने समतल समुद्र के गहरे टापू की सीमाएँ नापते रहते। घूमने के क्रम में यदि हमें मकोई का पौधा या करौंदे की झाड़ी फूली-फली मिल जाती तो नंदन वन की प्रतीति होने लगती।

हमारे इस भ्रमण में रोज़ी निरंतर साथ देती। जब हम डाल पर बैठकर झूलते रहते, वह कगार के सिरे पर हमारे पैरों के नीचे बैठी कूदने के आदेश की आतुर प्रतीक्षा करती रहती, जब हम पोखर की परिक्रमा करते, वह हमारे आगे-आगे मानो राह दिखाने के लिए दौड़ती और जब हम मकोई और करौंदे एकत्र करने लगते तब, वह किसी झाड़ी की छाया में बड़े विरक्त भाव से बैठी रहती। गरमी के दिनों में आम के पेड़ों से छोटी-बड़ी अंबियाँ हवा के झोंकों से नीचे गिरती रहतीं और उनके गिरने के स्वर के साथ रोज़ी सूखे पोखर में कूदती और पत्तियों के सरसराहट भरे समुद्र में से उसे खोज लाती। कच्ची केरी की चोपी लग जाने से बेचारी का गुलाबी छोटा मुँह धवीला हो जाता परंतु वह इस खोज कार्य से विरत न होती।

दोपहर को पिताजी कालेज में रहते और माँ घर के कार्य में या छोटे भाई की देखभाल में व्यस्त रहती। रामा बाज़ार चला जाता और कल्लू की माँ या तो सोती या माँज-माँज कर बरतन चमकाने में दत्तचित्त रहती। वे सब समझते कि हम लोग या तो अपने कमरे में
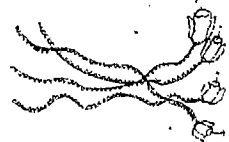
सो रहे हैं या पढ़-लिख रहे हैं। पर हम कुछ ऊँची खिड़की की राह से पहले रोज़ी को उतार देते और फिर एक-एक करके तीनों बाहर बगीचे में उतर कर करौंदे की झाड़ियों में छिपते-छिपते अपने उसी सूने मुक्तिलोक में पहुँच जाते। तीन में से किसी को भी कमरे में छोड़ना शंका से रहित नहीं था क्योंकि वह बिस्कुट, पेड़ा, बरफ़ी आदि किसी भी उत्कोच के लोभ में मुखबिर बन सकता था। परिणामतः तीनों का जाना अनिवार्य था। रोज़ी भी हमारे निर्बंध संप्रदाय में दीक्षित हो चुकी थी, अतः वह भी साथ आती थी। हमारे अभियान के रहस्य को वह इतना अधिक समझ गई थी कि दोपहर होते ही खिड़की से कूदने को आकुल होने लगती और खिड़की से उतार दिए जाने पर नीचे बैठ कर मनोयोगपूर्वक हमारा उतरना देखती रहती। कभी खिड़की से कूदते समय हममें से कोई उसी के ऊपर गिर पड़ता था पर वह चीं करना भी नियम विरुद्ध मानती थी।

ऐसे ही एक स्वच्छंद विचरण के उपरांत जब हम आम की डाल पर झूल-झूल कर अपने संग्रहालय का निरीक्षण कर रहे थे, तब एक आम गिरने का शब्द हुआ और रोज़ी नीचे कूदी। कुछ देर तक वह पत्तियों में न जाने क्या खोजती रही फिर हमने आश्चर्य से देखा कि वह मुँह में एक नकुल-शिशु को दबाए हुए ऊपर आ रही है। पत्तियों में से छोटा मुँह निकाल कर उसने जैसे ही बाहर विस्मित दृष्टि डाली वैसे ही अपने आपको रोज़ी के छोटे और अँधेरे मुख-विवर में पाया। निरंतर बिना दाँत चुभाए कच्ची अंबिया लाते-लाते रोज़ी इतनी अभ्यस्त हो गई थी कि उस कुलबुलाते जीव को भी सुरक्षित हम तक ले आई।

आकार में वह गिलहरी से बड़ा न था पर आकृति में स्पष्ट अंतर था। भूरा चमकीला रंग, काली कत्थई आँखें, नर्म-नर्म पंजे, गुलाबी नन्हा मुँह, रोओं में छिपे हुए नन्ही सीपियों-से कान, सब कुछ देखकर हमें वह जीवित नन्हा खिलौना-सा जान पड़ा। रोज़ी ने उसे हौले से पकड़ा था पर बचने के संघर्ष में उसके कुछ खरोंच लग ही गई थी। चोट से अधिक भय से वह निश्चेष्ट था। उसे पाकर हम सब इतने प्रसन्न हुए कि घोंसले, चिकने पत्थर, जंगली कनेर के फूल आदि का अपना विचित्र संग्रहालय छोड़कर उसे लिए हुए घर की ओर भागे।
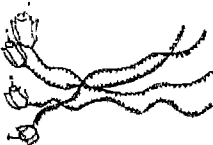
उस समय की उत्तेजना में हम अपने अज्ञात भ्रमण की बात भी भूल गए परंतु माँ ने यह नहीं पूछा कि वह छोटा जीव हमें कहाँ और कैसे मिला। उन्होंने जीव-जंतुओं को न सताने के संबंध में लंबा उपदेश देने के उपरांत उसे उसके नकुल माता-पिता के पास बिल में रख आने का आदेश दिया।

हमें बेचारे नकुल-शिशु से बड़ी सहानुभूति हुई। छोटे-से बिल में रात-दिन बड़े माता-पिता के सामने बैठे रहने में जो कष्ट बच्चे को हो सकता है, उसका हम अनुमान कर सकते थे। यदि एक छोटे कमरे में हमें सामने बैठाकर बाबूजी रात-दिन पढ़ते रहें और माँ सिलाई-बुनाई में लगी रहें तो हमारा क्या हाल होगा ! ऐसी ही कोई अप्रिय स्थिति बिल में रही होगी, नहीं तो यह इतना छोटा बच्चा भागता ही क्यों? अतः नकुल-शिशु के बिल और बिल निवासी माता-पिता की खोज में हम अनिच्छापूर्वक गए और खोज में असफल होकर निराश से अधिक प्रसन्न लौटे।

अब तो उस लघु प्राणी का हमारे अतिरिक्त कोई आश्रय ही नहीं रहा। प्रसन्नतापूर्वक हमने अपने खिलौनों के छोटे बक्स को खाली कर उसमें रूई और रेशमी रूमाल बिछाया। फिर बहुत अनुनय-विनय कर और उसके सब आदेश मानने का वचन देकर रामा को, उसे रूई की बत्ती से दूध पिलाने के लिए राज़ी किया। इस प्रकार हमारे लघु परिवार में एक लघुतम सदस्य सम्मिलित हुआ।

जब रामा की सतर्क देखरेख में वह कुछ दिनों में स्वस्थ और पुष्ट होकर हमारा समझदार साथी हो गया तब हम रामा को दिए वचन भूलकर फिर पूर्ववत अराजकतावादी बन गए।

माँ ने उसका नाम रखा नकुल जो उसकी जातिवाचक संज्ञा का तत्सम रूप था किंतु न जाने संक्षिप्तीकरण की किस प्रवृत्ति के कारण हम उसे निक्की पुकारने लगे।

पालने की दृष्टि से नेवला बहुत स्नेही और अनुशासित जीव है। गिलहरी के खाने योग्य कीट-पतंगा, फल-फूल आदि कोई भी खाद्य खाकर वह अपने पालने वाले के साथ चौबीसों
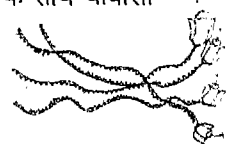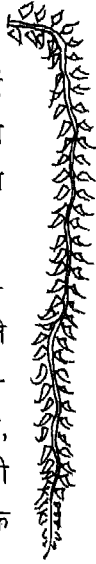
घंटे रह सकता है। जेब में, कंधे पर, आस्तीन में, बालों में जहाँ कहीं भी उसे बैठा दिया जाए वह शांत, स्थिर भाव से बैठ कर अपनी चंचल पर सतर्क आँखों से चारों ओर की स्थिति देखता-परखता रहता।

निक्की मेरे पास ही रहता था। निक्की या तो मेरे दुपट्टे की चुन्नट में छिपा हुआ झूलता रहता या गरदन के पीछे चोटी में छिपकर बैठता और कान के पास नन्हा मुँह निकाल कर चारों ओर की गतिविधि देखता। रोज़ी का कार्य तो हमारे साथ दौड़ना ही था परंतु निक्की इच्छा होने पर ही अपने सुरक्षित स्थान से कूद कर दौड़ता। एक दिन जैसे ही हम खिड़की से नीचे उतरे वैसे ही निक्की की सतर्क आँखों ने गुलाब की क्यारी के पास घास में एक लंबे काले साँप को देख लिया और वह कूद कर उसके पास पहुँच गया। हमने आश्चर्य से देखा कि निक्की दोनों पिछले पैरों पर खड़ा होकर साँप को मानो चुनौती दे रहा है और साँप हवा में आधा उठकर फुँफकार रहा है।

निक्की को साँप ने मार डाला समझ कर हम सब चीखने-पुकारने और साँप को पत्थर मारने लगे। यदि हमारा कोलाहल सुनकर रामा न आ जाता तो परिणाम कुछ दुखद भी हो सकता था।

उस दिन प्रथम बार हमें ज्ञात हुआ कि हमारा बालिश्त भर का निक्की कई फुट लंबे साँप से लड़ सकता है। उन दोनों की लड़ाई मानो पेड़ की हिलती डाल से बिजली का खेल थी। निक्की, साँप के सब ओर इतनी तेज़ी से घूम रहा था कि वह एक भूरे और घूमते हुए धब्बे की तरह लग रहा था। साँप फन पटक रहा था, फुँफकार रहा था, उसे अपनी कुंडली में लपेट लेने के लिए आगे-पीछे हट-बढ़ रहा था, परंतु बिजली की तरह तड़प उठने वाले निक्की को पकड़ने में असमर्थ था। वह तेज़ी से उछल-उछल कर साँप के फन के नीचे पैने दाँतों से आघात कर रहा था।

रामा के कारण इस असम युद्ध का अंत देखने के लिए तो हम बाहर खड़े न रह सके परंतु जब निक्की खिड़की पर आकर बैठा तब हमने झाँक कर साँप को कई खंडों में कटा
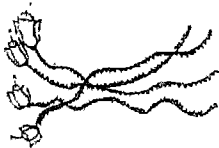
देखा। निक्की के मुँह में विष न लगा हो इस भय से रामा ने उसके मुँह को पानी में डुबा-डुबा कर धोया और फिर दूध दिया।

साँप जैसे विषधर को खंड-खंड करने की शक्ति रखने पर भी नेवला नितांत निर्विष है। जीव-जगत में जो निर्विष है वह विष से मर जाता है और जिसमें अधिक मारक विष है वह कम मारक विषवाले को परास्त कर देता है पर नेवला इसका अपवाद है। वह विषरहित होने पर भी न सर्प के विष से मरता है और न संघर्ष में विषधर से परास्त होता है।

नेवला सर्प की तुलना में बहुत कोमल और हल्का है। यदि साँप चाहे तो उसे अपनी कुडंली में लपेट कर चूर-चूर कर डाले। फन के फूत्कार से मूर्छित कर दे, परंतु वह नेवले के फूल से हलकेपन और बिजली जैसी गति से परास्त हो जाता है। नेवला न उसे दर्शन का अवसर देता है न व्यूह रचना का अवकाश और अपनी लाघवता के कारण नेवले को न विशेष अवसर चाहिए न सुयोग।

इसी बीच में बाबूजी ने मुझे शहर के मिशन स्कूल में भरती कराने का निश्चय लिया। इस योजना से तो हमारे समस्त कार्यक्रम के ध्वस्त होने की संभावना थी अतः हम सब अत्यंत दुःखी और चिंतित हुए परंतु विवशता थी।

निक्की सदा के समान मेरे साथ था, तथा बाबूजी के आदेश से उसे घर पर ही छोड़ देना आवश्यक हो गया। मिशन स्कूल पहुँच कर देखा कि वह शिकरम की छत पर बैठ कर वहाँ पहुँच गया है। फिर तो कपड़ों में छिपा कर भीतर ले जाने में मुझे सफलता मिल गई। परंतु कक्षा में उसे मेरे पास देखकर जो कोहराम मचा उसने मुझे स्तंभित और अवाक् कर दिया। 'शी हैज़ ब्रॉट अ रेपटाइल, थ्रो इट अवे' आदि कहकर जब सिस्टर्स तथा सहपाठिनियाँ चिल्लाने-पुकारने लगीं, तब रेपटाइल का अर्थ न जानने पर भी मैंने समझ लिया कि वह निक्की के लिए अपमानजनक संबोधन है। मैंने अप्रसन्न मुद्रा में बार-बार कहा कि यह मेरा निक्की है, किसी को काटता नहीं परंतु कोई उसके साथ बैठने को राजी नहीं हुआ। निरुपाय मैंने उसे फाटक से चारदीवारी तक फैली लता में बैठा तो दिया परंतु उसके खो जाने की शंका से मेरा मन पढ़ाई-लिखाई से विरक्त ही रहा।
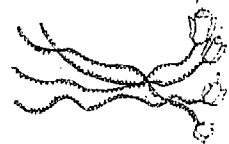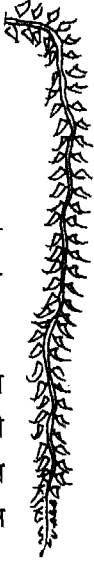
आने के समय जब निक्की कूद कर मेरे कंधे पर आ बैठा तब आनंद के मारे मेरे आँसू आ गए। तब से नित्य यही क्रम चलने लगा।

प्रतिदिन मुझे पहुँचाने और लेने रामा आता था और वह पालक के नाते निक्की के प्रति बहुत सदय था अतः मार्ग भर निक्की मेरी गोद में बैठकर आता था और मिशन के फाटक की लता में या बाड़े में घूम-घूमकर मेरी पढ़ाई के घंटे बिताता था। छुट्टी होने पर मेरे फाटक पर पहुँचते ही उसका कूदकर मेरे कंधे पर बैठ जाना इतना नियमित और निश्चित था कि उसमें कुछ मिनटों का हेर-फेर भी कभी नहीं हुआ।

इसके उपरांत हमारे परिवार में एक सबसे बड़ा जीव सम्मिलित हुआ। रियासत होने के कारण इंदौर में शानदार घोड़ों और सवारों का आधिक्य था। इसके अतिरिक्त हम अंग्रेज़ों के बच्चों को छोटे टट्टुआ या सफ़ेद गधों (जिसकी जाति के संबंध में रामा ने हमारा ज्ञानवर्द्धन किया) पर घूमते देखते थे।

एक दिन हम तीनों ने बाबूजी को मौखिक स्मृति-पत्र (मेमोरेण्डम) दिया कि हमारे पास छोटा घोड़ा न रहना अन्याय की बात है। यदि अन्य बच्चों को घोड़े पर बैठने का अधिकार है तो हमें भी वह अधिकार मिलना चाहिए।

बाबूजी ने हँसते हुए पूछा – सफ़ेद टट्टू पर बैठोगे? कुछ दिन बाद हमने देखा कि एक छोटा-सा चॉकलेटी रंग का टट्टू आँगन के पश्चिम वाले बरामदे में बाँधा गया है। बरामदा तो घोड़े बाँधने के लिए बनाया नहीं गया था अतः बाहर से टट्टू को लाने ले जाने के लिए दीवार में एक नया दरवाज़ा लगाया गया और उसकी मालिश करने तथा खाने, पीने, घूमने आदि की उसकी देखरेख के लिए छुट्टन नाम का साईस रखा गया।

अब तो हम उस छोटे टट्टू से बहुत प्रभावित और आतंकित हुए। हमारे तथा हमारे अन्य साथी जीवों के लिए न मकान में कोई परिवर्तन हुआ न कोई विशेष नौकर रखा गया। रामा को तो नौकर कहा नहीं जा सकता क्योंकि वह तो डाँटने-फटकारने के अतिरिक्त हमारे कान भी खींचता था। और हमारी खिड़की तक दरवाज़े में परिवर्तित नहीं हो सकी, जिससे
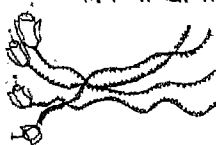
हम रोज़ी और निक्की के साथ कूदने के कष्ट से मुक्त हो सकते। बाबूजी से यह सुनकर भी कि वह टट्टू हमारी सवारी के लिए आया है हम सब चार-पाँच दिन उससे रुष्ट और अप्रसन्न ही घूमते रहे परंतु अंत में उसने हमारी मित्रता प्राप्त ही कर ली। रामा से उसका नाम पूछने पर ज्ञात हुआ कि उसे ताजरानी कह कर पुकारा जाता है। ताजमहल का चित्र हमने देखा था और रामा और कल्लू की माँ की सभी कहानियों में रानी के सुख-दुख की गाथा सुनते-सुनते हम उसके प्रति बड़े सदय हो गए थे। ताजमहल जैसे भवन की रानी होने पर भी यह वहाँ से कहानी की रानी की तरह निकाल दी गई है, यह कल्पना करते ही हमारी सारी ईर्ष्या और सारा रोष करुणा से पिघल गया और हम उसे और अधिक आराम देने के उपाय सोचने लगे।

वह इतनी सुंदर थी कि अब तक उसकी छवि आँखों में बसी जैसी है। हलका चॉकलेटी चमकदार रंग जिस पर दृष्टि फिसल जाती थी। खड़े छोटे कानों के बीच में माथे पर झूलता अयाल का गुच्छा, बड़ी, काली, स्वच्छ और पारदर्शी जैसी आँखें, लाल नथुने जिन्हें फुला-फुलाकर चारों ओर की गंध लेती रहती। उजले दाँत और लाल जीभ की झलक देते हुए गुलाबी ओठों वाला लंबा मुँह जो लोहा चबाते रहने पर भी क्षत-विक्षत नहीं होता था। ऊँचाई के अनुपात से पीठ की चौड़ाई अधिक है, सुडौल, मज़बूत पैर और सघन पूँछ जो मक्खियाँ उड़ाने के क्रम में मोरछल के समान उठती-गिरती रहती थी।

हम बार-बार सोचते हैं कि वह कुछ और छोटी क्यों न हुई। होती तो हम रोज़ी और निक्की के समान उसे भी अपने कमरे में रख लेते।

रानी को अपने कमरे में ले जाना संभव नहीं था अतः अस्तबल बना हुआ बरामदा ही हमारी अराजकता का कार्यालय बना।

बरामदा घोड़े बाँधने के लिए तो बना नहीं था अतः उसकी दीवार में एक खुली अलमारी और कई आले ताख थे। उन्हीं में हमारा स्वेच्छया विस्थापित और शरणार्थी खिलौनों का परिवार स्थापित होने लगा।
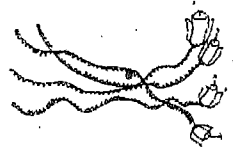
रानी की गरदन में झूल-झूलकर,उसके कान और अयाल में फूल खोंस-खोंस कर और उसको बिस्कुट, मिठाई आदि खिला-खिलाकर थोड़े ही दिनों में हमने उससे ऐसी मैत्री कर ली कि हमें न देखने पर वह अस्थिर होकर पैर पटकने और हिनहिनाने लगती।

फिर हमारी घुड़सवारी का कार्यक्रम आरंभ हुआ। मेरे और बहिन के लिए सामान्य, छोटी पर सुंदर ज़ीन खरीदी गई और भाई के लिए चमड़े के घेरे वाली ऐसी ज़ीन बनवाई गई जिससे संतुलन खोने पर भी गिरने का भय नहीं था।

बाहर के चबूतरे पर खड़े होकर हम बारी-बारी से रानी पर आरूढ़ होते और छुट्टन साथ दौड़ता हुआ हमें घुमाता। सवेरे भाई बहन घूमते और स्कूल से लौटने पर तीसरे पहर या संध्या समय मेरे साथ यह कार्यक्रम दोहराया जाता।

परंतु ऐसी सवारी से हमारी विद्रोही प्रकृति कैसे संतुष्ट हो सकती थी। अस्तबल में रानी की गरदन में झूलकर तथा स्टूल के सहारे उसकी पीठ पर चढ़कर भी हमें संतोष न होता था।

अंत में एक छुट्टी के दिन दोपहर में सबके सो जाने पर हम रानी को खोलकर बाहर ले आए और चबूतरे पर खड़े होकर उसकी नंगी पीठ पर सवारी करके बारी-बारी से अपनी अधूरी शिक्षा की पूरी परीक्षा लेने लगे।

यह स्वाभाविक ही था कि ताजरानी हमारी अराजक प्रवृत्तियों से प्रभावित हो जाती। वास्तव में बालकों में चेतना के विभिन्न स्तरों का बोध न होकर सामान्य चेतना का ही बोध रहता है। अतः उनके लिए पशु, पक्षी, वनस्पति सब एक परिवार के हो जाते हैं।

निक्की रानी की पूँछ से झूलने लगता था, रोज़ी इच्छानुसार उसकी गरदन पर उछल कर चढ़ती और कूदती थी और हम सब उसकी पीठ पर ऐसे गर्व से बैठते थे मानो मयूर सिंहासन पर आसीन हों।

रानी हम सबकी शक्ति और दुर्बलता जानती थी। उसकी नंगी पीठ पर अयाल पकड़ कर बैठने वालों को वह दुल्की चाल से इधर-उधर घुमा कर संतुष्ट कर देती थी। परंतु एक

बार मेरे बैठ जाने पर भाई ने अपने हाथ की पतली संटी उसके पैरों में मार दी। चोट लगने की तो संभावना ही नहीं थी परंतु इससे न जाने उसका स्वाभिमान आहत हो गया या कोई दुखद स्मृति उभर आई। वह ऐसे वेग से भागी मानो सड़क, पेड़, नदी, नाले सब उसे पकड़-बाँध रखने का संकल्प किए हों।

कुछ दूर मैंने अपने आपको उस उड़नखटोले पर सँभाला परंतु गिरना तो निश्चित था। मेरे गिरते ही रानी मानो अतीत से वर्तमान में लौट आई और इस प्रकार निश्चल खड़ी रह गई जैसे पश्चाताप की प्रस्तर प्रतिमा हो।

साथियों की चीख-पुकार से सब दौड़े और फिर बहुत दिनों तक मुझे बिछौने पर पड़ा रहना पड़ा। स्वस्थ होकर रानी के पास जाने पर वह ऐसी करुण पश्चाताप भरी दृष्टि से मुझे देखकर हिनहिनाने लगी कि मेरे आँसू आ गए।

एक बार भाई के जन्मदिन पर नानी ने उसके लिए सोने के कड़े भेजे। सामान्यतः हम कोई भी नया कपड़ा या आभूषण पहन कर रानी को दिखाने अवश्य जाते थे। सुंदर छोटे-छोटे शेरमुँह वाले कड़े पहन कर भाई भी रानी को दिखाने गया और न जाने किस प्रेरणा से वह दोनों कड़े उतार कर रानी के खड़े सतर्क कानों में वलय की तरह पहना आया।

फिर हम सब खेल में कड़ों की बात भूल गए। संध्या समय भाई के कड़े रहित हाथ देखकर जब माँ ने पूछताछ की तब खोज आरंभ हुई। पर कहीं भी कड़ों का पता नहीं चला।

रानी अपने कानों को खुरों से खोदती और हिनहिनाती रही। अंत में बाबूजी का ध्यान उसकी ओर गया और उन्होंने मिट्टी हटाने का आदेश दिया। किसी ने कुछ गहरा गड्ढा खोदकर दोनों कड़े गाड़ दिए थे। दंड तो किसी को नहीं मिला परंतु रानी सारे घर के हृदय में स्थान पा गई।

एक घटना अपनी विचित्रता में स्मरणीय है। एक सवेरे उठने पर हमने रानी के पास एक छोटे-से घोड़े के बच्चे को देखा। 'यह कहाँ था?' कह-कह कर हमने रामा को इतना
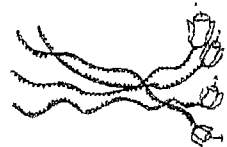
थका दिया कि उसने निरुपाय घोषणा की कि वह नया जीव रानी के पेट में दाना चारा खाकर सो रहा था। भाई ने उत्साह से पूछा 'और भी है' और रामा ने स्वीकृति में सिर हिलाया।

अब तो हम विस्मित भी हुए और क्रोधित भी। यह छोटे जीव कोई काम-धाम नहीं करते और हमको पीठ पर बैठा कर दौड़ने वाली रानी का दाना चारा स्वयं खाकर उसके पेट में लेटे रहते हैं।

भाई ने कहा – रानी का पेट चीर कर हम कम से कम एक और बच्चा घोड़ा निकाल लें – तब बच्चे घोड़ों पर वे छोटे बहिन भाई बैठेंगे और रानी मेरी सेवा में रहेगी। प्रस्ताव मुझे भी उचित जान पड़ा पर जब एक दोपहर को वह कहीं से शाक काटने का चाकू ले आया तब मेरे साहस ने जवाब दे दिया। एक और भी समस्या की ओर हमारा ध्यान गया । आखिर हम रानी का पेट सिएँगे कैसे? माँ की महीन सी सुई से तो सीना संभव नहीं था। टाट सीने का बड़ा सूजा रामा अपनी कोठरी में रखता था जहाँ हमारी पहुँच नहीं थी। कुछ दिनों के उपरांत जब रानी का अश्व शिशु कुछ बड़ा होकर दौड़ने लगा तब हमें न अपना क्रोध स्मरण रहा और न प्रस्ताव।

फिर अचानक हमारे अराजक राज्य पर क्रांति का बवंडर बह गया और हमें समझदारों के देश में निर्वासित होना पड़ा। अवकाश के दिनों में जब हम घर लौटे तब निक्की मर चुका था, रानी और उसका बच्चा पवन किसी को दे दिए गए थे। केवल, दुर्बल, अकेली और खोई सी रोज़ी हमारे पैरों से लिपट कर कूँ-कूँ करके रोने लगी।
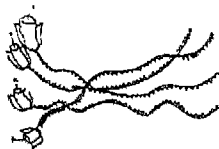
बोध-प्रश्न

1. लेखिका ने रोज़ी की किन-किन विशेषताओं का वर्णन किया है?
2. निक्की नेवला लेखिका के जीवन में कैसे आया?
3. दोपहर में बगीचे में घूमने के अभियान में तीनों भाई-बहनों में से किसी एक को भी कमरे में अकेला क्यों नहीं छोड़ा जा सकता था?
4. छावनी में लेखिका का दोपहर का समय कैसे बीतता था? उसमें रोज़ी की क्या भूमिका रहती थी?
5. नेवले के बिल की खोज में असफल होने पर लेखिका को प्रसन्नता क्यों हुई?
6. बच्चों को नकुल-शिशु से बड़ी सहानुभूति क्यों हुई?
7. रानी की रूपाकृति का वर्णन कीजिए।
8. आपको रोज़ी, निक्की और रानी में से कौन अधिक प्रिय लगा और क्यों?
9. टिप्पणी कीजिए कि यह रेखाचित्र बालमन की सरलता और चतुराई का सुंदर चित्रण प्रस्तुत करता है।
10. पाठ से ऐसे प्रसंग छाँटकर इस कथन की पुष्टि कीजिए कि स्नेह की भावना मनुष्य और पशुओं को सहज ही एक डोर में बाँध देती है।

6 जगदीशचंद्र बसु

शिवदानसिंह चौहान
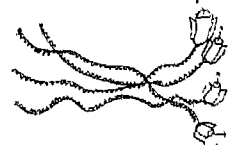
डार्विन ने सन् 1872 में एक पुस्तक लिखी थी – मानव और पशुओं में भावनाओं की अभिव्यक्ति। पुस्तक का प्रतिपाद्य था कि मनुष्य से इतर भी जो चर प्राणी हैं वे सुख-दुख आदि का अनुभव कुछ उसी तरह करते हैं जिस तरह मनुष्य, यथा – चोट लगने पर पीड़ा का अनुभव, खाली पेट क्षुधा का अनुभव, नर-मादा के रूप में पारस्परिक आकर्षण का अनुभव, आक्रमण होने पर भय या क्रोध का अनुभव, जीतने पर प्रसन्नता, तृप्ति या सुख का अनुभव। तात्पर्य यह है कि जिन्हें हम मानवीय अनुभूतियाँ कहते हैं, सामान्य परिस्थितियों में कुछ वैसी ही अनुभूतियाँ जानवरों और पक्षियों की भी होती हैं।

परंतु क्या वनस्पति-जगत के असंख्य अचर जीव-रूपों में भी अनुभूतियाँ होती हैं या वे केवल भाव-शून्य प्राणी हैं और कुछ भी महसूस नहीं करते? क्या निर्जीव या जड़ पदार्थ चेतन-तत्त्व से (जो जीवन की निशानी है) सर्वथा शून्य हैं? ये अनेक प्रश्न थे जिन पर कवि-कल्पना तो दौड़ी थी लेकिन वैज्ञानिक रीति से अनुसंधान और परीक्षण करके कोई प्रामाणिक बात किसी ने नहीं बताई थी। शकुंतला की विदाई तथा राम-वन-गमन के समय द्रुम-लताओं ने भी शोक प्रकट किया था। प्रेमी की तरह विरह-वेदना से पीड़ित होकर रात भी रोती है और अग्निपिंड सितारे भी आँसू बहाते हैं। लेकिन यह सब तो कवि-कल्पना है, वास्तविकता क्या है? इस वास्तविकता का सबसे पहले उद्घाटन किया आचार्य जगदीश चंद्र बसु ने।

आरंभ में वनस्पति-विज्ञान आचार्य बसु का क्षेत्र नहीं था, यद्यपि पेड़-पौधों के प्रति उनके मन में बचपन से ही अनुराग था। ढाका ज़िले के राढ़ाखाल नाम के गाँव में जहाँ उनका जन्म हुआ था, उन्हें प्रकृति के साहचर्य में रहने का अवसर मिला था। फिर कलकत्ता के

सेण्ट ज़ेवियर कालेज से बी. ए. पास करके वे इंग्लैण्ड गए जहाँ उन्होंने लंदन विश्वविद्यालय से बी. एस-सी. की परीक्षा पास की। लौटकर कलकत्ता के प्रैसीडेंसी कालेज में भौतिक-विज्ञान का अध्यापन-कार्य करते हुए उन्होंने अपने हाथ से नए यंत्र बनाकर रेडियो-तरंगों के संबंध में अनेक प्रयोग किए। सन 1895 में बिजली की अदृश्य किरणों के विकिरण संबंधी उनके अनुसंधानों की यूरोप के सभी देशों के वैज्ञानिकों ने मुक्तकंठ से प्रशंसा की।

इटली के वैज्ञानिक मार्कोनी के नाम से आज सभी परिचित हैं क्योंकि उसने सन् 1900 में बेतार का तार और रेडियो का आविष्कार करके दिक् और काल की दूरी पर काबू पाने की क्षमता मनुष्य को प्रदान की थी। आचार्य बसु अगर रेडियो-तरंगों के क्षेत्र में अनुसंधान जारी रखते और भौतिक-विज्ञान को सदा के लिए त्याग कर वनस्पति-विज्ञान को अपना कार्य-क्षेत्र न बना लेते तो संभव है कि मार्कोनी की जगह उनको ही रेडियो के जन्मदाता होने का श्रेय मिलता।

आचार्य बसु में छोटी-मोटी साधारण चीज़ों से सूक्ष्म यंत्र बनाने की अद्‌भुत प्रतिभा थी। कलकत्ते में उन्होंने अपनी सारी संपत्ति देकर जो 'बसु विज्ञान मंदिर' स्थापित किया उसमें उनके बनाए ऐसे अनेक आश्चर्यजनक यंत्र हैं। इस विज्ञान मंदिर को देखकर विएना विश्वविद्यालय के डायरेक्टर प्रो-मोलिस ने कहा, "यह तो परियों के तिलिस्म से भी ज़्यादा आश्चर्यजनक है।" यह तिलिस्म नहीं है तो क्या है? यहाँ बसु महोदय के बनाए ऐसे सूक्ष्म यंत्र हैं जिनके द्‌वारा आप वनस्पति-जगत के प्राणियों की बात तो जाने दें, जड़-पदार्थों की भाव-प्रतिक्रियाएँ भी अपनी आँखों से साक्षात देख सकते हैं।

लेकिन भौतिक-विज्ञान से अलग होकर बसु महोदय वनस्पति-विज्ञान की ओर क्यों प्रवृत्त हुए, इसका एक दिलचस्प कारण था। बिजली का करेण्ट छूते ही हमें ज़ोर से आघात लगता है, अर्थात हमारे अंगों में बिजली के करेण्ट से तत्काल गति पैदा होती है — आघात की चेतना उस गति के रूप में हमारी प्रतिक्रिया या हमारे अंगों के प्रत्युत्तर का द्‌योतक होती है। आचार्य बसु ने बिजली-संबंधी अनुसंधान करते समय देखा कि केवल जीवित प्राणियों में
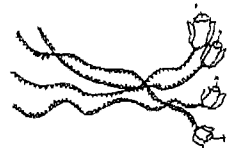
ही नहीं, जड़ पदार्थों में भी बिजली के करेण्ट से ऐसा ही प्रत्युत्तर मिलता है। इस तथ्य ने उनको जड़ और चेतन की एकता के संबंध में विचार करने के लिए विवश कर दिया। आचार्य बसु ने सोचा कि अगर जड़ पदार्थ से ही जीवन का प्रादुर्भाव हुआ है और जीव-तत्त्व या चेतन का बीज किसी अन्य नक्षत्र से नहीं आया तो संभव है कि जिसे हम जड़ कहते हैं वह नितांत जड़ नहीं है, चेतन-गर्भा है। इसका पता बाहर से प्रदान की गई उत्तेजनाओं के प्रति जड़ पदार्थ की प्रतिक्रियाओं का परीक्षण करके ही लगाया जा सकता था।

बिजली के करेण्ट का जड़ पदार्थ भी प्रत्युत्तर देते हैं यानी वे उसकी गति का आघात महसूस करते हैं, यह तो वह देख ही चुके थे। अब उन्होंने देखा कि बाहर की उत्तेजना की मात्रा यदि अत्यधिक हो तो जड़ पदार्थ भी थकान का अनुभव करते हैं और विश्राम करने के बाद पुनः अपनी पूर्वावस्था में आ जाते हैं। उन्होंने परीक्षण करके यह भी देखा कि तीव्र उत्तेजक द्रव्यों की जड़ पदार्थों में भी तीव्र प्रतिक्रिया होती है और उनपर ज़हरीले द्रव्यों का प्रभाव वैसा ही होता है जैसा चेतन प्राणियों पर। अपने परीक्षणों से उन्हें यह विश्वास हो गया कि जड़ और चेतन की प्रतिक्रियाएँ बहुत कुछ समान होती हैं तब उन्होंने जीव-जगत की ओर दृष्टि घुमाई।

आचार्य बसु ने देखा कि जड़ और चर जगत के बीच के वे उद्भिज प्राणी भी हैं जो अपनी जगह पर अचल खड़े रहते हैं, वहीं अंकुरित होते, पल्लवित-पुष्पित और फलित होते हैं और सूखकर मर जाते हैं। हवा चलती है तो हिलते-डुलते हैं, नहीं तो देखने में जड़-वस्तुओं की तरह चुपचाप खड़े या पड़े रहते हैं। वनस्पति-जगत के इन असंख्य उद्भिजों में आँख-कान-नाक जैसी ज्ञानेन्द्रियाँ या हाथ-पाँव जैसी कर्मेन्द्रियाँ भी नहीं होतीं जिससे यह अनुमान किया जा सके कि वे अपना आहार जुटाने के लिए कोई प्रयत्न करते हैं या बाह्य परिस्थितियों की अनुकूलता-प्रतिकूलता अनुभव करते हैं।

कवियों और दार्शनिकों की बात जाने दीजिए, वे तो कल्पना और अनुमान से ज़मीन-आसमान के कुलाबे मिला लेते हैं। लेकिन द्रुम-लताएँ भी मनुष्य की तरह ही सुख-दुख का
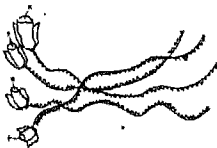
अनुभव करती हैं, इसे क्या आज तक किसी ने अपनी आँखों से देखा है? नहीं देखा। लेकिन किसी ने क्या पत्थर या लोहे को बाहर से प्राप्त उत्तेजनाओं का प्रत्युत्तर देते देखा था? बसु महोदय ने सोचा कि जब जड़ पदार्थ प्रत्युत्तर देते हैं तो यह संभव ही नहीं कि बाह्य उत्तेजनाओं और बदलती परिस्थितियों की प्रतिक्रिया उद्भिज प्राणियों में न होती हो क्योंकि उनमें तो जीवन है। इन प्रतिक्रियाओं को हम नंगी आँखों से नहीं देख सकते। ऐसे सूक्ष्म बोध और सूक्ष्म दर्शक यंत्र बनाने होंगे जो हमें पेड़-पौधों की भाव-प्रतिक्रियाएँ प्रत्यक्ष दिखा सकें। यही सोचकर बसु महोदय ने ऐसे सूक्ष्म यंत्रों के आविष्कार का बीड़ा उठाया।

कुछ ही दिनों में भारतीय सामग्री से भारत में ही उन्होंने विभिन्न प्रकार के सूक्ष्म-बोध-यंत्र बना डाले जिन्हें देखकर संसार के वैज्ञानिक आश्चर्यचकित रह गए। ये सभी यंत्र 'बसु विज्ञान मंदिर' में मौजूद हैं और आज भी विद्यार्थी उनके द्वारा उद्भिज प्राणियों की संवेदना-प्रतिक्रियाओं का अनुसंधान और अध्ययन करते हैं।

इन यंत्रों द्वारा परीक्षण करके बसु महोदय ने वनस्पति-जगत के बारे में जिन तथ्यों का उद्घाटन किया वे सचमुच परी देश की कहानियों की तरह अद्भुत और विचारोत्तेजक हैं।अंग्रेज़ी के प्रसिद्ध उपन्यासकार और दार्शनिक ऐल्डस हक्सले किसी समय कलकत्ता आए थे और आचार्य बसु से मिलने के लिए उस तिलिस्मघर – 'बसु विज्ञान मंदिर' – में गए थे। बसु महोदय ने उन्हें इन यंत्रों की सहायता से प्राणियों के बारे में वे सभी आश्चर्यजनक बातें दिखाईं जो सबसे पहले केवल उन्होंने देखी थीं।

इन यंत्रों की सहायता से वृक्षों के बढ़ने की अति सूक्ष्म गति को भी सूई से शीशे की प्लेट पर अंकित होते हुए देखा जा सकता है। यह गति एक सेकेंड में औसतन एक इंच का लाखवाँ हिस्सा होती है इसलिए क्रेस्टोग्राफ़ ही उसे अंकित कर सकता है। यह भी देखा जा सकता है कि बिजली का करेंट लगते ही पौधे आघात से तिलमिलाकर काँपने लगते हैं और उनके कोषाणुओं में वैसा ही संकुचन होता है जैसा अन्य जीव-जंतुओं के शरीर में । इन यंत्रों की सहायता से यह स्पष्ट देखा जा सकता है कि पौधे किस प्रकार भोजन ग्रहण करते हैं।
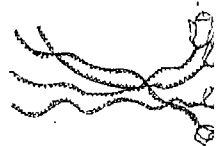
पृथ्वी की नमी से अपना भोजन ग्रहण करते समय पौधे अत्यंत धीमी गति से आक्सिजन निकालते जाते हैं, जैसे श्वास छोड़ रहे हों। एक यंत्र द्वारा इस बात को देखा जा सकता है कि जब पेड़-पौधे आक्सिजन की एक खास मात्रा निकाल चुकते हैं तब यंत्र की सूई इसका संकेत देती है और एक घंटी अपने आप बज उठती है। इसका मतलब है कि पौधे ने पर्याप्त भोजन ग्रहण कर लिया है। जिस समय पौधा धूप में रहता है, उस समय यह घंटी नियमित रूप से एक निश्चित अवधि के बाद बज उठती है लेकिन छाया में या रात के समय पौधा भोजन ग्रहण करना बंद कर देता है और घंटी नहीं बजती। पौधे की जड़ों में अगर कोई उत्तेजक द्रव्य मिलाकर पानी डाला जाए तो घंटी बेतहाशा ज़ोर से और जल्दी-जल्दी बजने लगती है, लेकिन अगर कोई मादक द्रव्य या विष मिला दिया जाए तो फिर घंटी नहीं बजती।

हक्सले ने एक ऐसे वृक्ष का उल्लेख किया है जिसको कुछ दिन पहले आचार्य बसु ने 'बसु विज्ञान मंदिर' के उद्यान में आरोपित करने के लिए किसी दूसरी जगह से जड़ समेत उखड़वा कर मँगाया था। पूरे वयस्क पेड़ को उखाड़कर फिर से आरोपित करना उसके लिए खतरनाक होता है क्योंकि वह इस आघात से ही मर जाता है। क्लोरोफ़ॉर्म देकर मनुष्य के शरीर का ऑपरेशन किया जा सकता है और बेहोशी की अवस्था में मनुष्य के स्नायु बड़े-से-बड़े आघात को झेल लेते हैं, इसी सिद्धांत को दृष्टि में रखकर आचार्य बसु ने उखाड़ने से पहले क्लोराफ़ॉर्म देकर उस वृक्ष को बेहोश कर दिया था। होश में आने पर वृक्ष को इस बात का अनुभव भी नहीं हुआ कि उसने स्थान-परिवर्तन किया है। उसने तुरंत पृथ्वी में जड़ पकड़ ली और लहलहाने लगा। इस परीक्षण का ही परिणाम है कि आजकल नई सड़कों और पार्कों के बनने पर रूस और अमरीका में बड़े-बड़े पेड़ दूसरे स्थानों से लाकर वहाँ लगा दिए जाते हैं और एक रात में ही पार्क और सड़कें घने वृक्षों की छाया से ढक जाती हैं। लेकिन क्लोरोफ़ॉर्म की अधिक मात्रा से जिस तरह मनुष्य की मृत्यु हो सकती है, उसी तरह पेड़ की भी। इसी यंत्र से आचार्य बसु ने यह भी दिखाया कि जिस तरह अत्यधिक शीत से मनुष्य के अंग सुन्न पड़ जाते हैं उसी तरह वृक्षों में भी स्पंदन रुक जाता है।
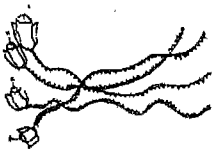
वृक्ष की बाहरी छाल के नीचे वाली स्नायविक शिराओं में यंत्र लगाने पर वृक्षों के हृदय की धड़कन रिकार्ड की जा सकती है। मनुष्य की तरह ही वृक्षों में भी नाड़ी का स्पंदन होता है लेकिन अत्यधिक धीमी गति से एक करोड़ गुना बढ़ाकर ही यंत्र द्वारा उसकी गति को ग्राफ़ के रूप में अंकित किया जा सकता है। लगभग एक मिनट में एक बार ही वृक्ष के स्नायु धड़कन के रूप में विस्तार और संकोचन की क्रिया पूरी करते हैं। लेकिन वृक्ष के पानी में कपूर या कैफ़ीन मिला दीजिए और देखिए कि मनुष्य के हृदय पर इन पदार्थों का जैसा प्रभाव पड़ता है, वृक्ष के हृदय पर भी वे ठीक वैसा ही प्रभाव डालते हैं। उसकी गति यकायक तेज़ हो जाती है और वह ज़ोर से धड़कने लगता है और अगर कपूर और कैफ़ीन जैसे उत्तेजक पदार्थों की जगह पानी में विष या अधिक मात्रा में क्लोरोफ़ॉर्म मिलाकर जड़ में डाल दें तो ग्राफ़ की रेखाएँ एक मृत्युग्रस्त मानव की पीड़ा जैसा आभास देती हैं। वृक्ष के हृदय का स्पंदन रुक जाता है और प्लेट पर सूई ऊँची-नीची रेखाएँ अंकित करने की जगह धीरे-धीरे एक सीधी रेखा खींचने लगती है। लेकिन जब तक वृक्ष में जीवन का कुछ भी अंश शेष रहता है, यह रेखा बीच-बीच में कुछ ऊँची-नीची होती जाती है, मानो जिस वृक्ष की ज़हर देकर हत्या की गई है वह जीवन के लिए अंतिम संघर्ष कर रहा हो और उसमें रह-रहकर बुझते जीवन की लौ चमक उठती हो। कुछ देर बाद सूई का ऊपर-नीचे उठना बंद हो जाता है और वृक्ष की मृत्यु की सूचना देने वाली सीधी रेखा खिंच जाती है। आचार्य बसु ने अपने परीक्षणों से चर जगत के प्राणियों से उद्भिज प्राणियों की समानता सिद्ध करके वनस्पति-विज्ञान के क्षेत्र में अनुसंधान के नए क्षितिज खोल दिए। अपने इस कार्य से वे विज्ञान के क्षेत्र में सदा अमर रहेंगे।

सन 1937 में इस महान भारतीय वैज्ञानिक ने गिरीडीह में अपने जीवन की अनुसंधान-यात्रा समाप्त करके सदा के लिए विश्राम लिया।
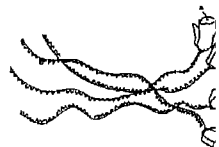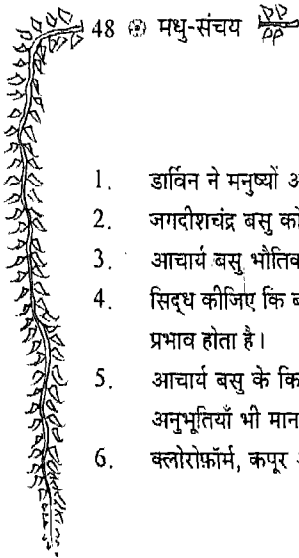
बोध-प्रश्न

1. डार्विन ने मनुष्यों और पशुओं में क्या-क्या समानताएँ बताई हैं?
2. जगदीशचंद्र बसु को रेडियो के जन्मदाता होने का श्रेय क्यों नहीं मिल पाया?
3. आचार्य बसु भौतिक विज्ञान से वनस्पति विज्ञान के क्षेत्र में क्यों आ गए थे?
4. सिद्ध कीजिए कि बाहर की उत्तेजना जितनी ही तीव्र होती है, जड़ पदार्थों पर उनका उतना ही तीव्र प्रभाव होता है।
5. आचार्य बसु के किन्हीं दो प्रयोगों के उदाहरण देते हुए प्रमाणित कीजिए कि वनस्पति जगत की अनुभूतियाँ भी मानवीय अनुभूतियों के समान होती हैं।
6. क्लोरोफ़ॉर्म, कपूर और कैफ़ीन देने से वृक्ष पर क्या-क्या प्रभाव पड़ते हैं?
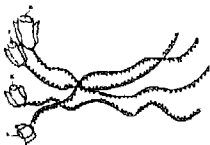
7 दिल में जमी बर्फ़

अशोक राही

(एक डॉक्टर के बँगले में कॉलबेल बजने की ध्वनि...घंटी बार-बार अधीरता से बजती है जैसे बजाने वाला उद्विग्न हो। निरंतर कॉलबेल बजने से झुँझलाया बूढ़ा नौकर जीवन बड़बड़ाता हुआ दरवाज़ा खोलता है। दरवाज़े पर एक आभिजात्य महिला सरोज खड़ी है।)

सरोज डॉक्टर विजयश्री घर पर हैं?

जीवन घर पर तो हैं। पर डॉक्टर साहब छुट्टी के दिन किसी भी मरीज़ को नहीं देखतीं। आप कल हॉस्पिटल में मिल लीजिएगा।

सरोज देखिए मेरा उनसे मिलना बहुत ज़रूरी है। मेरी बेटी तीन दिन से सख्त बीमार, परेशान है। उसका इलाज डॉक्टर विजया ही कर सकती हैं। आप कृपया...

जीवन *(ज़ोर से बोलता है)* देखिए बहन जी! आपसे कह दिया ना *(सरोज अंदर कक्ष में आ जाती है)* अरे! आप अंदर कैसे आ रही हैं, कह दिया ना डॉक्टर साहब नहीं मिलेंगी।

(वह महिला को रोकने का प्रयास करता है)

डॉ. विजया *(आती हुई)* जीवन काका, क्या शोर है, कौन हैं आप? देखिए, मैं आज छुट्टी पर हूँ।

सरोज डॉक्टर...मेरी बेटी...

डॉ. विजया आप कल हॉस्पिटल में आ जाएँ।

सरोज डॉक्टर ! मैं सरोज हूँ सरोज सिंह, मैं आपके पास बड़ी आशा लेकर आई हूँ।

विजया ठीक है, पर डॉक्टर की भी अपनी निजी ज़िंदगी है। क्या एक दिन, सिर्फ़ एक दिन भी हमारा अपना नहीं हो सकता...

सरोज डॉक्टर प्लीज़ ...

विजया देखिए मैं एक 'साइकेट्रिस्ट' हूँ। मेरे मरीज़ों की बीमारी पर चौबीस घंटे में कोई खास फ़र्क नहीं पड़ता। कल तसल्ली से ...

सरोज (*अचानक सुबक पड़ती है*) डॉक्टर, तीन दिन से उसने एक शब्द नहीं बोला। एक पल को नहीं सोई। एक कौर भी नहीं खाया ... वो मर जाएगी, डॉक्टर, वो मर जाएगी। मैं आपके हाथ ...

विजया (*एक लंबी साँस लेकर*) पेशेंट कहाँ है?

सरोज (*खुश होकर*) बाहर बरामदे में।

विजया जीवन काका, पेशेंट को यहाँ बैठाओ मैं आती हूँ अभी।

सरोज थैंक्यू डॉक्टर, थैंक्यू वैरी मच।

(*विजया अंदर चली जाती है और सरोज प्रिया को बाहर से अंदर लाती है*)

जीवन बहन जी, किस्मत अच्छी है आपकी। पिछले पाँच बरस से छुट्टी के दिन बिटिया अपने कमरे से बाहर ही नहीं निकलती है। पर आज पहली बार ... अरे.. अरे ... कैसी फूल-सी लड़की है, चेहरा देखो कैसा मुरझा रहा है इसका...

(*विजया एप्रन पहने स्टेथोस्कोप लगाए कमरे में वापस आती है*)

विजया जीवन काका, गेट को ताला लगा देना। अब कोई नहीं आना चाहिए।

जीवन बिटिया डॉक्टर प्रशांत आएँ तो ...

विजया (*कुछ सोचकर*) हाँ, हाँ बस उसके अलावा कोई नहीं। अब तुम जाओ।

जीवन ठीक है, बिटिया।

(*विजया सरोज से मुखातिब होकर*)

विजया क्या उम्र है इसकी...

सरोज जी, सत्रह बरस ...
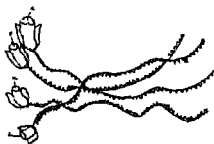
विजया पढ़ती है ?

सरोज जी हाँ, कॉलेज में फर्स्ट ईयर साइंस।

विजया हूँ। नाम क्या है तुम्हारा? हाँ, मैं तुमसे पूछ रही हूँ। ये बोलती क्यों नहीं...

सरोज पिछले तीन रोज़ से गुमसुम है। न बोल रही है, न खा रही है।

विजया नाम क्या है ?

सरोज प्रिया ... सुप्रिया सिंह ..

विजया इसके पिता क्या करते हैं ?

सरोज अपनी फ़ैक्टरी है फ़ुटवीयर की।

विजया आप ?

सरोज मैं एसिस्टेंट डायरेक्टर हूँ, सोशल वेलफ़ेयर में।

विजया कितने बच्चे हैं आपके...

सरोज जी बस, एक ही बेटी है।

विजया प्रिया की ये हालत कब से हुई है ?

सरोज डॉक्टर साहब बहुत ज़हीन लड़की है ये पर पिछले कुछ दिनों से बहुत चुप-चुप-सी रहने लगी है।

विजया आप ज़रा इधर आइए (*सरोज को मंच के दूसरे कोने पर ले जाकर*) अब मैं आपसे जो भी पूछूँ उसके एक दम सही-सही जवाब दें...

सरोज जी ! जी हाँ।

विजया आपके पति फ़ैक्टरी कब जाते हैं?

सरोज सुबह साढ़े आठ बजे।

विजया आपका दफ़्तर ?

सरोज साढ़े नौ।

विजया लौटते कब हैं?

सरोज मैं पाँच बजे और वो सात-आठ बजे तक।
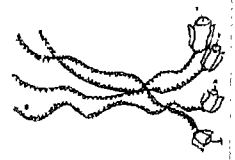
विजय यानी नाश्ता और लंच आप अलग-अलग लेते हैं?

सरोज जी हाँ ।

विजया रात का खाना साथ खाते हैं?

सरोज जी? जी हाँ... जी नहीं, वो ड्रिंक्स लेते हैं।

विजया मिसेज़ सिंह, मैं एक बहुत महत्त्वपूर्ण सवाल आपसे पूछ रही हूँ।

सरोज जी।

विजया स्कूल से लेकर कॉलेज तक आपने अपनी बेटी के लिए कितनी बार लंच बॉक्स तैयार किया है?

सरोज (*हतप्रभ*) जी! मैं समझी नहीं।

विजया मेरा मतलब एकदम साफ़ है मिसेज़ सिंह, आपने अपनी बेटी को किसी दिन अपने हाथ से लंच बॉक्स तैयार करके दिया?

सरोज हम रोज़ इसे पॉकिट मनी देते हैं, जितना ये चाहती है दस, बीस, पचास रुपये...

विजया मिसेज़ सिंह, क्या आपने कभी प्रिया को लंच बॉक्स तैयार करके दिया है?

सरोज जी ... जी नहीं।

(संगीत एकदम टूटता है जैसे कोई काँच का गिलास टूटा हो)

विजया पसीने पोंछ लीजिए मिसेज़ सिंह ! उस दिन क्या बात हुई थी?

सरोज किस दिन ?

विजया तीन दिन पहले, जबसे प्रिया गुमसुम है?

सरोज इतवार था उस दिन। मैं और मेरे पति एक लंच पार्टी में गए थे। पार्टी इन्होंने दो-एक ऑफ़िसरों को एक बड़ी सप्लाई दिलवाने के लिए दी थी। पार्टी में वह ऑफ़िसर ज़्यादा पी गया और एक छोटी-सी बात पर इनसे उलझ गया । लाखों की सप्लाई हाथ से निकलती देख मेरे पति का मूड बुरी तरह खराब हो गया। लंच के बाद इन्होंने भी पी ली। घर लौटते-लौटते शाम ढलने लगी थी... घर आए तो प्रिया ड्राइंग रूम में अपने एक सहपाठी बसु के साथ ज़ोर-ज़ोर से
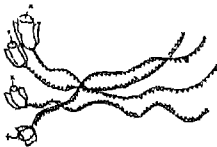
हँस रही थी। शायद उसने कोई चुटकुला सुनाया था। सोफ़े पर दोनों बहुत करीब बैठे थे। बस ये देख कर इनका मूड और उखड़ गया। और दोपहर की झल्लाहट प्रिया पर उतार बैठे।

दृश्य परिवर्तन

(धीरे-धीरे विजया व सरोज पर प्रकाश कम होता है। दूसरे प्रकाशवृत्त में राजेश्वर, प्रिया और सरोज खड़े हैं)

राजेश्वर तुम चुप रहो। क्या ये नहीं बोल सकती? देखो वो जो भी हो। उससे कहो वो भाग जाए और फिर कभी प्रिया से मिलने यहाँ नहीं आए...

सरोज *(गुस्से में)* ये क्या कह रहे हैं आप। ये दोनों दोस्त हैं...

राजेश्वर मेरे घर में वही होगा जो मैं चाहूँगा। वो लड़का अब यहाँ कभी नहीं आएगा। प्रिया जाओ, तुम अपने कमरे में। मैं सो रहा हूँ और मुझे डिस्टर्ब मत करना, सुबह मेरी फ्लाइट है।

(प्रिया धीरे-धीरे सुबकती है फिर तेज़ी से रोती है। प्रकाश वापस डॉक्टर और सरोज पर आता है)

सरोज बस उस दिन से प्रिया गुमसुम है।

विजया आपके पति का क्या नाम है?

सरोज जी ... आर. पी. सिंह

जीवन बिटिया ! डॉक्टर प्रशांत आए हैं।

विजया उन्हें बिठाओ मैं आती हूँ पाँच मिनट में। मिसेज़ सिंह क्या प्रिया को दो-तीन रोज़ के लिए आप यहाँ छोड़ सकती हैं मेरे घर?

सरोज क्या ! आपके घर?

विजया आपको विश्वास नहीं मिसेज़ सिंह?

सरोज नहीं डॉक्टर, मुझे पूरा यकीन है। मेरी बेटी ठीक तो हो जाएगी न?

विजया प्रिया शरीर से नहीं मन से बीमार है और हाँ आप आज शाम अपने पति को...
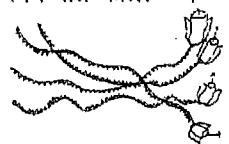
सरोज जी, वे तो बाहर गए हैं। वह कल रात तक लौटेंगे।

विजया तो आते ही भेज दें। काका (*ज़ोर से आवाज़ देकर*) जीवन काका...

काका आय रहे हैं बिटिया...कहो।

विजया काका, प्रिया को मेरी लाइब्रेरी में ले जाओ। (फुसफुसाकर) सुनो, इस पर नज़र रखना। ठीक है मिसेज़ सिंह, आप अपने पति को यहाँ भेज दें उनसे भी कुछ बातें पूछनी हैं ...

सरोज अच्छा, नमस्ते डॉक्टर साहब ....

(*सरोज दृश्य से बाहर जाती है व प्रशांत का प्रवेश*)

विजया हैलो प्रशांत!

प्रशांत हैलो डॉक्टर! आज तो कमाल कर दिया। छुट्टी के दिन पेशेंट देख लिया। मैं तो हैरान हूँ।

विजया एक खिलते हुए फूल को मुरझाते हुए नहीं देख पाई।

प्रशांत मैं जानता हूँ विजया, तुम एक माँ के आँसू देखकर पिघल गईं। जीवन काका ने मुझे सब बता दिया। पर उस लड़की को तुमने घर क्यों रोक लिया?

विजया एक कहानी सुनाने के लिए।

प्रशांत (*हँसते हुए*)अच्छा! किस्सागोई भी करने लगी हो? किसकी कहानी सुनाओगी, हातिमताई की?

विजया हातिमताई की कहानियाँ एक ज़माने की वास्तविकता थीं डॉक्टर प्रशांत। परंतु आज का यथार्थ तो बेहद उलझा है, मकड़ी के जाले की तरह।

प्रशांत कभी-कभी तुम्हारी बातें एक पहेली-सी लगती हैं विजया।

विजया दरअसल मेरा काम ही यही है डॉक्टर, गुत्थियाँ सुलझाना। मन की उलझी हुई गाँठें खोलना। कभी तुमने देखा होगा डॉक्टर कि हम किसी धागे का सिरा भी नहीं ढूँढ़ पाते और उस खोए हुए सिरे की तलाश में परेशान हो जाते हैं।

प्रशांत हाँ, हाँ, मैं बचपन में पतंग उड़ाता था तो कई बार चरखी की डोर इस तरह उलझ जाती थी कि सारा मांझा खराब हो जाता।
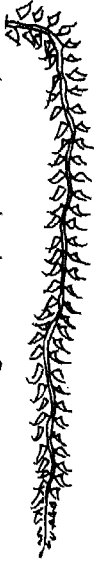
विजया ठीक कहा तुमने डॉ. प्रशांत। आदमी का हाल भी कुछ-कुछ ऐसा ही है। चरखी में लिपटीडोर जैसा। मनुष्य के जीवन में यथार्थ के इतने चक्कर हैं कि थोड़ी-सी लापरवाही में ही वह उलझ जाता है। अब इस लड़की को ही देखो। इसके माँ-बाप के पास अपनी इकलौती बेटी के लिए वक्त नहीं, बेचारी मासूम लड़की ने एक दोस्त तलाश लिया तो बाप गलत समझ बैठा। बहरहाल छोड़ो पर आज मैं उसे एक कहानी सुनाने जा रही हूँ। क्या तुम भी सुनोगे?

प्रशांत (*स्वगत*) तुम्हारी तो हरेक कहानी में मुझे दिलचस्पी है विजया। (ज़ोर से) ज़रूर, क्यों नहीं डॉक्टर ...

विजया तो ठीक है। जीवन काका....

जीवन का बात है बिटिया ..

विजया प्रिया क्या कर रही है?

जीवन पहले तो लाइब्रेरी में गुमसुम बैठी रही फिर उसने एक-दुइ किताब उठाई और उनको उलटने-पलटने लगी। फिर टेपरिकार्डर पर एक सितार वाली कैसेट चला दी थी, बस सुनते-सुनते कुरसी पर सोय गई।

विजया दैट्स गुड। अब उसे यहाँ ले आओ और ठीक मेरे सामने वाली कुरसी पर बिठाना और सुनो जीवन काका, ये सब तेज़ लाइटें बुझा दो, बस दो-एक छोटी लाइट जला देना ...

(*जीवन जाता है*)

प्रशांत तुम्हारा ये खेल मेरी समझ में नहीं आ रहा डॉक्टर विजया ...

विजया ये खेल नहीं है डॉक्टर, थेरेपी है।

जीवन बिटिया प्रिया आ गई।

विजया (*उल्लास भरे स्वर में*) अरे आओ, प्रिया आओ। यहाँ बैठो। शाबाश प्रिया! मुझे पता है तुम क्यों गुमसुम हो।

उस दिन तुम्हारे पापा ने बसु का बेवजह अपमान किया इसीलिए न? मैं जानती हूँ बसु तुम्हारा एकमात्र साथी है।
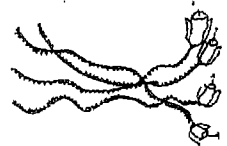
अच्छा सुनो, तुमने बचपन में कहानी तो सुनी होगी। अरे अरे .... अरे ....तुम्हारे मम्मी-डैडी को तुम्हारे पास बैठने की फ़ुरसत कहाँ है? मैं तुम्हें एक कहानी सुनाती हूँ। ये कहानी राजा-रानी की कहानी नहीं है। ये ठीक तुम्हारे जैसी एक लड़की की कहानी है। चलो उस लड़की का नाम 'कल्पना' मान लेते हैं।
एक साधारण परिवार की लड़की थी कल्पना। तीन छोटी बहिनों और एक भाई की सबसे बड़ी बहन। पिता दफ़्तर में बाबू थे। अभावों में पली थी इसलिए संवेदनशील भी थी। सदा हँसती-हँसाती रहती। पर उसकी हँसी के पीछे छिपा रहता था एक दर्द। पढ़ने-लिखने में जितनी होशियार थी कॉलेज की एक्टिविटीज़ में भी उतना ही बढ़-चढ़कर हिस्सा लेती। उसी कॉलेज में एक लड़का था राज। बड़े घराने का घमंडी लड़का। खुद को सबसे ज़्यादा ज़हीन समझता था। एक दिन कॉलेज की वाद-विवाद प्रतियोगिता में उसका सामना कल्पना से हो गया।
(प्रकाश अभिनेताओं के पीछे से है। मात्र उनकी छाया दिखलाई पड़ती है, चेहरे नहीं। कॉलेज की एक सभा की गहमा-गहमी)

छाया दृश्य प्रारंभ

पु. स्वर साथियो, माननीय अध्यक्ष महोदय की अनुमति से यह अंतर्महाविद्यालय वाद-विवाद प्रतियोगिता प्रारंभ करता हूँ। पिछले दिनों विभिन्न स्तरों पर जो प्रतियोगिताएँ हुईं उनमें निर्णायकों ने कुमारी कल्पना और राज को अंतिम प्रतियोगिता के लिए चुना हैं। आज यह निर्णय होना है कि इन दोनों में से कौन सर्वाधिक योग्य है। तो सर्व प्रथम मिस्टर राज अपना पक्ष रखें। हाँ, मैं आपको आज का विषय तो बताना ही भूल गया। आज का विषय है 'स्त्री-पुरुष के बुनियादी अधिकार और उनकी योग्यताएँ', तो पहले मिस्टर राज..

राज माननीय अध्यक्ष महोदय और निर्णायकगण। मैं पहले बोलने का अधिकार कुमारी कल्पना को देता हूँ क्योंकि महिला होने के कारण उनका प्रथम अधिकार छीनना अशिष्टता होगी।
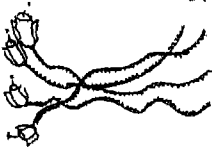
कल्पना माननीय निर्णायकगण, मुझे अपने प्रतिद्वंद्वी साथी वक्ता का अनुग्रह स्वीकार नहीं। मैं अतीत की वह स्त्री नहीं जो अपने घर की चहार-दीवारी में पुरुष की अनुकंपा पर अपना जीवन गुज़ार लेती थी। हाँ फिर अपने साथी के इस आग्रह में मुझे पुरुष दंभ का स्वर भी स्पष्ट सुनाई दे रहा है। मैं उनके सुझाव को धन्यवाद सहित वापस उन्हें ही सौंप रही हूँ।

(सभा में तालियाँ बज उठती हैं)

एक स्वर अरे भैया ये तो भारी पड़ेगी।

राज प्रजापति ब्रह्मा ने पुरुष और नारी की रचना की और उनका कार्य विभाजन भी किया। पुरुष के हिस्से में पुरुषार्थ और नारी को कमनीयता प्रदान की। इसीलिए जीवन में मेहनत के काम पुरुष करता है। वह जीविका कमाता है, परिवार की रक्षा करता है और समाज के महत्त्वपूर्ण दायित्वों को निबाहता है। नारी तो घर की शोभा है। गृहलक्ष्मी है, लज्जा उसका स्वाभाविक भूषण है। वह अपनी रक्षा करने में स्वयं असमर्थ है इसलिए पुरुष को उसका रक्षक बनाया। इसलिए नारी का कर्तव्य है कि वह पंरपरा से चले आ रहे सामाजिक ढाँचे की रक्षा करे और गृहस्वामिनी बनी रहे। इसी में समाज का हित है।

पु. स्वर अभी आपके समक्ष राज ने अपने विचार रखे, अब कुमारी कल्पना...

कल्पना माननीय अध्यक्ष महोदय, विद्वान् निर्णायकगण, मेरे साथी श्री राज ने अपने वक्तव्य में परोक्ष रूप से नारी अधिकार के पक्ष में ही तर्क दिए हैं। जहाँ तक नारी का गृहलक्ष्मी और गृहशोभा होने का प्रश्न है, घर सँभालने का दायित्व तो नारी का अवश्य है पर उसे शोभा और लक्ष्मी की उपाधियों से विभूषित करने वाला पुरुष ही है। उसने इन शब्दों के संग गृह इसलिए जोड़ा कि जिससे नारी अपने घर-परिवार की लक्ष्मण रेखा में बँध कर रह जाए। जहाँ तक प्रश्न है, नारी अपनी रक्षा स्वयं नहीं कर सकती — यह भी पुरुष की मात्र प्रवंचना है। पुरुष
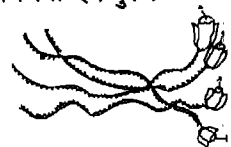
को अपनी जन्मदायिनी को उसके अधिकार देने ही होंगे। अब नारी शक्ति को जाग्रत होने से कोई रोक नहीं सकता।

(कल्पना के इस वक्तव्य पर तालियाँ गूँज उठती हैं)

पु. स्वर साथियो, निर्णायकगण की एक मत राय है कि वाद-विवाद प्रतियोगिता की सर्वश्रेष्ठ वक्ता हैं कुमारी कल्पना।

(छाया दृश्य समाप्त – प्रकाश विजया पर)

विजया इस घटना के कोई एक सप्ताह बाद कल्पना के घर के सामने एक कार आकर रुकी। कार से अधेड़ स्त्री-पुरुष उतरे। ये राज के माता-पिता थे। कल्पना को अपने घर की बहू बनाने का प्रस्ताव लेकर आए थे। कल्पना के माँ-बाप के लिए यह अप्रत्याशित घटना थी। गरीब की बेटी लखपति की गृहलक्ष्मी बने। वे तुरंत तैयार हो गए। शादी की तारीख तय हो गई, विवाह की तैयारी होने लगी। पर विवाह के एक दिन पूर्व एक तूफ़ान आया जिससे सब स्तब्ध रह गए। दूल्हा अचानक अपना घर छोड़कर गायब हो गया। वह दंभी युवक नहीं चाहता था कि उसकी पत्नी उससे अधिक समझदार हो। सब हतप्रभ थे पर कल्पना समझ गई कि यह उस लड़के की एक घिनौनी चाल थी। कोई दूसरी होती तो गले में फंदा डाल लेती या ज़िंदगी भर के लिए टूट जाती। पर कल्पना न टूटी न झुकी, वह हालातों से लड़ती रही और एक दिन...

(अचानक प्रिया फूट-फूट कर रोने लगती है)

विजया अरे प्रिया, तुम क्यों रो रही हो? तुम सोच रही हो कि तुम बुज़दिल हो। तुम गलत बातों का विरोध नहीं कर सकती। नहीं प्रिया तुम्हें अब बोलना होगा। अन्याय को सहना कायरता है चाहे वह माँ-बाप का ही क्यों न हो। *(प्रिया ज़ोर-ज़ोर से रोने लगती है)*

जीवन काका प्रिया को कमरे में ले जाकर सुला देना। अब ये बिलकुल ठीक है।

काका आओ बिटिया, आओ। *(प्रिया चली जाती है)*
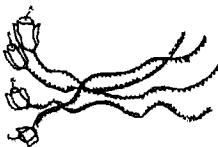
विजया डॉ. प्रशांत, बहुत दर्द जम गया था इस लड़की के दिल में। रोने से बर्फ़ टूटी है। मैं यही चाहती थी (*यह समझ कर कि प्रशांत उसकी बात सुन नहीं रहा*) प्रशांत, डॉ. प्रशांत....

प्रशांत (*चौंक कर*) हैं... हैं ...

विजया कहाँ खो गए डॉक्टर ...

प्रशांत (*भावुक होकर*) विजया, एक बात सच-सच बताना इस कहानी की कल्पना तुम ही थी न ....

विजया तुम्हारा अनुमान सही है डॉक्टर प्रशांत।

दृश्य परिवर्तन

(*दरवाज़े की घंटी बजती है*)

जीवन आते हैं भई, कहिए किससे मिलना है।

राजेश्वर मैं आर. पी. सिंह हूँ। प्रिया का पिता।

जीवन अरे हाँ, आइए आप इस रूम में बैठिए, आपका तो दुइ दिवस से इंतज़ार हो रहा है। (*ज़ोर से*) बिटिया। प्रिया के बापू आए हैं।

(*दूसरे कमरे से*)

विजया बैठाओ उन्हें। मैं और डॉ. प्रशांत आ रहे हैं।

राजेश्वर (*विजया की तरफ मुड़ते हुए*) नमस्ते डॉक्टर, नमस्ते....

विजया (*राजेश्वर को ध्यान से देखती है*) ओह तो आप ही हैं मिस्टर आर. पी. सिंह।

राजेश्वर अब कैसी है प्रिया ? क्या हो गया था मेरी बेटी को?

विजया यह प्रश्न आपको मुझसे नहीं, खुद अपने से करना है मिस्टर आर. पी. सिंह। मिस्टर सिंह, आप बुरा न मानें तो मैं आपको राजेश्वर प्रसाद सिंह या मिस्टर राज कह कर पुकार सकती हूँ।

प्रशांत (*चौंक कर*) मिस्टर राज....

राजेश्वर (*हकलाकर*) आप .... आप ....

विजया थोड़ा-सा अपनी याददाश्त पर ज़ोर डालिए मिस्टर राज। मुझे पहचान जाएँगे।

राजेश्वर आप विजयश्री ....

विजया शुक्र है आपके दंभी पुरुष ने मुझे पहचान तो लिया। आप तो समझ बैठे होंगे कि अपनी हार का बदला आपने उस लड़की का अपमान करके ले ही लिया। पर कैसा संयोग है कि मिस्टर राजेश्वर आज आप मेरे सामने बैठे हैं।

राजेश्वर अपने किए पर मैं बहुत शर्मिंदा रहा हूँ डॉक्टर।

विजया पर मैं हैरान हूँ। ज़माना बदल गया परंतु आप नहीं बदले। एक बार आपने, अपने झूठे घमंड में एक निर्दोष लड़की को बरबाद करना चाहा और अब अपने इसी दंभ से अपनी मासूम बेटी को पागलपन की तरफ़ धकेल रहे हैं।

राजेश्वर नहीं, मैं उससे बहुत प्यार करता हूँ।

विजया प्यार तो आप सिर्फ़ पैसे से ही करते हैं। पैसा जीवन का एक बड़ा सत्य है मिस्टर राजेश्वर, मानती हूँ, पर पैसा ही तो सब कुछ नहीं। आपकी बेटी कभी अपने घर से लंच बॉक्स लेकर स्कूल नहीं गई। आपने उसे रुपया दिया। जब उसकी सहेलियाँ अपनी माँ के हाथ के बने आलू के पराठे चटखारे लेकर खाती होंगी तो वह कैंटीन का बेज़ायका समोसा खाती होगी। बात बहुत मामूली है मिस्टर राजेश्वर पर माँ के हाथ के पकवान और रुपयों से खरीदे मिष्ठान्न में बड़ा फ़र्क है। उसे रोज़ लगता होगा कि वह जैसे रुपया चबा रही है।

राजेश्वर पर इसके लिए उसकी माँ दोषी है।

विजय सारा दोष स्त्री को देने की अपनी आदत अभी तक नहीं बदली मिस्टर राज। अपने एक सहपाठी के साथ ज़रा सा हँसने-बोलने के लिए आपने अपनी बेटी को अपराधिन ही बना दिया। अपने पुरुष दंभ को छोड़िए और अपनी बच्ची को सँभालिए, वरना अपनी आत्मा के संग-संग आप उसे भी खो देंगे।
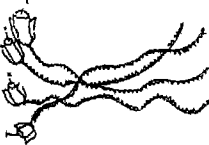
राजेश्वर मुझे माफ़ कर दीजिए डॉक्टर। मानता हूँ मैं बहुत घमंडी हूँ पर मैं अपनी बेटी को खोना नहीं चाहता। मैं उससे बहुत प्यार करता हूँ।

विजया प्रिया अभी सो रही है। शाम को उसे ले जाइएगा। आपका अपनी बेटी से सही व्यवहार ही उसकी दवा है।

राजेश्वर अच्छा डॉक्टर नमस्ते, हो सके तो मुझे क्षमा कर देना।
(तेज़ी से निकल जाता है)

बोध-प्रश्न

1. डॉ. विजया ने छुट्टी के दिन मरीज़ को न देखने का नियम क्यों तोड़ा?
2. डॉ. विजया ने सरोज से यह क्यों पूछा कि आपने क्या कभी प्रिया को लंच बॉक्स तैयार करके दिया है?
3. प्रिया के गुमसुम हो जाने का क्या कारण था?
4. राज विवाह से एक दिन पूर्व घर छोड़कर क्यों भाग खड़ा हुआ?
5. विजया ने अपनी कहानी क्यों सुनाई? उससे प्रिया पर क्या प्रभाव पड़ा?
6. राजेश्वर को अपनी भूल का अहसास कैसे हुआ?
7. एकांकी से ऐसे संवाद चुनिए जो धनाढ्य परिवारों की जीवन शैली पर प्रकाश डालते हैं।
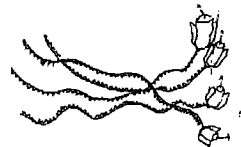
गांधी जी का जन्तर

तुम्हें एक जन्तर देता हूं। जब भी तुम्हें सन्देह हो या तुम्हारा अहम् तुम पर हावी होने लगे, तो यह कसौटी आजमाओ:

जो सबसे गरीब और कमजोर आदमी तुमने देखा हो, उसकी शकल याद करो और अपने दिल से पूछो कि जो कदम उठाने का तुम विचार कर रहे हो, वह उस आदमी के लिए कितना उपयोगी होगा। क्या उससे उसे कुछ लाभ पहुंचेगा? क्या उससे वह अपने ही जीवन और भाग्य पर कुछ काबू रख सकेगा? यानि क्या उससे उन करोड़ों लोगों को स्वराज्य मिल सकेगा जिनके पेट भूखे हैं और आत्मा अतृप्त है?

तब तुम देखोगे कि तुम्हारा सन्देह मिट रहा है और अहम् समाप्त होता जा रहा है।

मो क गांधी